हिन्दी-गौरव-ग्रन्थमाला—४९ वाँ ग्रन्थ

हार

लेखक
श्रीयुत यादवेन्द्र सिंह जी (रीवा)
बी० ए० एल-एल० बी०

प्रकाशक
गाँधी-हिन्दी-पुस्तक-भण्डार,
प्रयाग

समर्पण

योगेन्द्र—

हार नहीं है यह मणियों का,
नहीं मोतियों का यह हार ।
सुरभित उपवन के कलियों का,
नहीं सुखद सुन्दर आधार ॥

\+ + +

मेरे मानस-तल में उठते,
कभी कभी जो विषम विचार ।
उन्हें पिरो कर 'हार' बनाया,
चाहो तो कर लो स्वीकार ॥

—यादवेन्द्र

सूची

परिचय

परिचय

आकाश में पक्षियों के उड़ने का कोई निर्दिष्ट मार्ग नहीं है। स्वच्छन्द कलाकार की कल्पनाओं का कोई बँधा हुआ रास्ता नहीं है। वर्तमान कहानियों का लेखक एक उद्दण्ड, स्वाधीन और भीषण प्रकृति का मनुष्य मालूम पड़ता है। इसलिए उसकी उद्दण्ड रचनाओं को व्यवस्थित नियमों के तराज़ू में तौलना निरर्थक मालूम होता है। कहानी शास्त्र के व्यवरेवार कायदों की पाबन्दी इन कहानियों में नहीं की गई है, पर इतना तो मैं दावा के साथ कह सकता हूँ कि यह कहानियाँ कला से शून्य नहीं हैं। प्रत्येक कहानी में मनोगत भावना को सुन्दर और रोचक रूप दिया गया है। कहानियाँ छोटी छोटी हैं और वे अत्यन्त सरल और सुबोध भाषा में लिखी गई हैं। इस प्रकार कहानी कला के व्यापक नियमों का प्रतिपालन अज्ञात पर स्वाभाविक रूप से हो गया है पर इन कहानियों के नवजवान लेखक को कला की दृष्टि से कहाँ तक सफलता प्राप्त हुई है यह निर्णय करना समालोचकों का काम है जो समय पाकर अपने आप हो जायगा। मेरा काम तो महज़ इतना

गाँ

है कि मैं पाठकों को संक्षेप में इन कहानियों का पूर्व परिचय दे दूँ उन्हें थोड़े में बतला दूँ कि इनमें क्या है।

तीन चार कहानियों को छोड़ कर लगभग ११ कहानियों का विषय प्रेम की व्यापक और स्वच्छन्द भावना है। प्रेम की वह स्वच्छन्द भावना सामाजिक नियमों के बंधन में रहना पसन्द

स्वच्छंद प्रेम

नहीं करती। समाज के बन्धन उसे बाँध रखने में असमर्थ दिखाई पड़ते हैं। बन्धन से घोर असन्तोष प्रत्येक कहानियों में मौजूद है। कहीं प्रेमी और प्रेमिकाएं अपने गुप्त प्रेम के अविरल चिन्तन में घुल घुल कर प्राण देते हैं और संसार से खुल कर कुछ नहीं कहते। 'दुःखद स्मृति' नाम की कहानी में पार्वती ने सुरेन्द्र के प्रेम में घुल घुल कर प्राण दे दिए और संसार को पता भी न चला। कहीं एक फ़रीक़ ने दूसरी की सेवा करने में ही अपना जीवन बिता दिया और अन्त समय तक अपना परिचय न दिया। 'प्रेमी' नाम की कहानी में महराज ने आजीवन अपनी प्रेयसी की अज्ञात सेवा की और अपने परिचय दान की उत्कंठा को बुरी तरह दबा रखा। इस ज़ब्त की भी कोई सीमा है! कहीं पर निराधार सन्देह की वेदी पर विपिन ऐसे धीर, गम्भीर और त्यागी प्रेमी का जीवन ही बलिदान हो गया। 'पवित्र स्मृति' नामी कहानी में सुरेश का प्रेम सेवा के मार्ग में ढुलकता ढुलकता पतन की अन्तिम सीमा पर पहुँच गया। मर्य्यादा के प्रेमी 'सुरेश' का क्या अनिष्ट हुआ इसको तो लेखक ने अज्ञात के

अन्धकार में छोड़ दिया पर मोहन की विशाल उदारता द्वारा चंद्रकला को सर्वनाश की खंदक से उबार लिया। 'तब नहीं अब' नाम की कहानी में हेमी और प्रताप के बढ़ते हुए प्रेम ने 'हेमी' की विशुद्ध भावना के प्रभाव से जान्ह्वी की उज्वल पवित्रता का रूप धारण किया। 'कड़ुआ सत्य' में उद्दण्ड किशोर अपनी प्रचण्ड भावना को दबाने में असमर्थ रहा और समाज के सिंहासन पर क़ब्ज़ा जमाकर अपने निरंकुश शासन द्वारा अपनी दुर्धर्ष इच्छा की पूर्ति की।

ध्यान-पूर्वक देखने से मालूम होगा कि लेखक की प्रत्येक कहानी का प्रेम विपरीत परिस्थियों की ज़मीन में उगा है और प्रतिकूल जलवायु में उसका पालन-पोषण हुआ है। मार्के की बात तो यह है कि प्रतिकूल जल-वायु किसी भी अवस्था में उस नाज़ुक पौधे को सुखा नहीं सके। इससे लेखक के नायक नायिकाओं के चरित्र बल की दृढ़ता प्रमाणित होती है। वस्तुतः इन कहानियों का कोई नायक या नायिका दुर्बल स्वभाव की नहीं है। वे राज और समाज के विद्रोही हैं, डाकू हैं परायी स्त्रियों का हरण करनेवाले हैं, लेकिन दुर्बल और कमज़ोर नहीं हैं। वे कभी रोते नहीं। वे आँसू बहाना पाप समझते हैं। जो कुछ उचित अनुचित करते साहस और सीनाज़ोरी के साथ करते हैं। वायु की आँधी की तरह, नदी की बाढ़ की तरह, समुद्र के तूफ़ान की तरह वे तहस-नहस करनेवाले हैं, अचल हिमाचल की तरह सिद्धान्तों पर अड़ने-

पात्रों के चरित्र

वाले हैं; विशाल वसुंधरा की तरह सर्दी गर्मी सहनेवाले हैं; आकाश की तरह उदार हैं। सारांश यह कि सब के सब चरित्रवान हैं। प्रेमी महराज की धीरता, गम्भीरता और बहादुरी पर किसे नाज़ न होगा। अपने मित्र प्रेमानन्द के लिए महेन्द्र का स्त्री-त्याग और विपत में फिर उनकी सहायता करना कितना बड़ा आत्म-विसर्जन है। 'पवित्र स्मृति' में मोहन की उदारता देख कर आकाश धरती चूमता है; संसार सिहर उठता है। स्त्री के पेट में अपने मित्र का गर्भ सुनकर उदार मोहन के होठों पर हरकत नहीं होती, भौहों में बल नहीं आता, आँखों में लाली नहीं दौड़ती, ख़ून में जोश नहीं आता प्रतिहिंसा के भाव नहीं उठते। होठों पर वही मुस्कुराहट, आँखों से वही शील और हृदय में वही अनुराग है। क्षमा की माला समान उदार बाहों के बीच में अनुताप से जलती हुई स्त्री को ग्रहण करना और अपने मित्र द्वारा स्थापित गर्भ को उसकी पवित्र स्मृति का चिन्ह समझना! क्या ग़ज़ब की उदारता है! अनर्थ के भयङ्कर बादलों से क्या अमृत की वर्षा हुई है! कमाल तो यह है कि कहानी का कोई पाठक यदि उसके सीने में दिल है, तो इस जघन्य पाप के विधायक विश्वासघाती सुरेश को भी चरित्र-हीन कहने की निर्दयता न करेगा। असावधानी का नाम पाप नहीं है याद रहे सुरेश वह लुच्चा लफंगा नहीं है जो पराई स्त्रियों की ताक में रहता है और जिसके हृदय में उनके सतीत्व का मूल्य नहीं है। कोई भी भलामानस यह नहीं कह सकता कि मोहन की पत्नी पर 'सुरेश' का

निर्द्वन्द्व अधिकार था। सुरेश स्वयं ऐसा नहीं समझता था। बड़ा अच्छा होता कि इतने घनिष्ट और चिर सहवास में भी सम्बन्ध की आदर्श विशुद्धता क़ायम रहती, लेकिन यदि नहीं रह सकी तो कोई ऐसा घोर अनर्थ नहीं हो गया। आकाश वहीं है, ज़मीन वहीं है, वृक्ष वैसे ही खड़े हैं क़यामत नहीं आ गई। मेरा तो ख़्याल है कि सुरेश को मुंह छिपाने की भी आवश्यकता नहीं थी। इंसान था, भूल हो गई, क़िस्सा ख़तम हुआ। लेकिन बेचारे नेकनीयत सुरेश को इतना अनुताप हुआ इतनी लज्जा आई कि उसने अपने काले मुख को सदा के लिए छिपा लिया। संसार में कौन ऐसा पाप है जो अनुताप की आग में जल कर स्वाहा नहीं हो सकता। "कड़ुआ सत्य" के किशोर को छोड़ कर इन कहानियों के प्रायः सभी प्रेमी बड़े त्यागी हैं। संभवतः त्याग और सेवा को लेखक सच्चे प्रेम का आदर्श समझता है। धीरेन्द्र ने ज़ोहरा के प्रेम के लिए—ज़ोहरा के लिए के नहीं—अपने प्राणों से प्यारे धर्म को छोड़ दिया। धर्म परिवर्त्तन के बाद स्वेच्छा से धीरेन्द्र को ज़ोहरा से अलग करके लेखक ने बड़ी सावधानी और सूक्ष्म दृष्टि से काम किया है। धीरेन्द्र को अपना धर्म कितना प्यारा था और कितनी मज़बूती के साथ उसने अपने धर्म का परित्याग किया है यह भी लेखक ने सफलता पूर्वक दिखा दिया है और इससे धीरेन्द्र के प्रेम का मूल्य चौगुना हो गया है।

इन आदर्श चरित्रों की बात छोड़िये। दूसरे की स्त्री नलिनी को

लाकर अपने घर बैठा लेनेवाले किशोर का साहस, उसकी दृढ़ता और संलग्नता चरित्र-हीनता के द्योतक नहीं हैं। प्रेमी किशोर ने अपनी प्रेयसी के दाम्पत्य जीवन पर अनधिकार हमला नहीं किया। सब से पहला काम उसने यह किया कि बड़ी कुशलता के साथ कहानियों की रचना और प्रकाशन द्वारा उसने नलिनी के हृदय की थाह ली। दूतत्व के इस नए विधान पर लेखक को बधाई। (मुझे भय है कि प्रस्तुत कहानियों की रचना भी कहीं इसी अभिप्राय से न हुई हो) बड़ी उधेड़ बुन के बाद किशोर के हृदय ने यह भयानक फ़ैसला दिया कि:—

'जो वस्तु मेरी है वह पंडित के चार मंत्र पढ़ देने से दूसरे की नहीं हो सकती'

कहानियों के जो प्रेमी इतने उद्दण्ड, निर्भीक और स्वच्छंद नहीं है वे अपना सर्वस्व देकर भी मर्य्यादा की रक्षा करते हैं। उनका हृदय कटी पतंग नहीं है जो हवा के रुख़ पर उड़ा करती

मर्यादा की रक्षा

है, बल्कि वह तुरंग है जिसकी लगाम विवेक के हाथ में है। प्रेमी महराज ने अंत समय तक मर्य्यादा की रक्षा की। निगाह की ज़रा सी चूक का वह घोर प्रायश्चित किया कि शरीर सूख कर काँटा हो गया। रसीली शांता के संसर्ग में रमेश को ज्यों ही पतन की आशंका हुई त्यों ही वह सदा के लिए ग़ायब हो गया अन्तिम कहानी की चंदा इसी मर्य्यादा की बेदी पर क़ुर्बान हो गई। उसने अफ़ीम खाकर जान दे दी पर मर्य्यादा भंग नहीं होने दी।

अधिकांश कहानियों में लेखक ने 'प्रेम' का प्रतिपादन किया है इसलिए उस विषय पर उसके विचारों की एक शृंखला सी नज़र आती है। लेखक ने प्रेम के कई रूपों को लिया है, जिनमें

प्रेम के रूप

तीन प्रधान हैं:—

एक वह रूप है जिसमें प्रेमी अपने प्रेम पात्र को अपनाना चाहता है। 'कडुआ सत्य' का नायक इन्हीं प्रेमियों में से है। 'संदेह' में कमला के भी यही विचार दर्शाए गए हैं :—

'विपिन, मुझे ढोंग करना नहीं आता। मैं तो जिसको प्यार करता हूँ उसको पाने का भी प्रयत्न करता हूँ। यही मेरा स्वभाव है।'

'पवित्र स्मृति' में सुरेश ने इसी प्रकार के विचार प्रगट किए हैं :—
"चन्दा, मैं दो के बीच में तीसरे को नहीं चाहता। मैं पूर्ण का पुजारी हूँ, टुकड़ों से शान्ति नहीं मिल सकती ... ... "

दूसरा वह रूप है जिसमें प्रेमी अपने प्रेम पात्र को भोग की सामग्री के रूप में नहीं अपनाता बल्कि उसके साथ कोई ऐसा सम्बन्ध स्थापित करता है जिस पर समाज को अंगुश्त नुमाई का मौक़ा नहीं मिलता। चूँकि स्त्री के ऊपर सब से बड़ा और पूर्ण अधिकार पति का होता है इसलिए अन्य संबंध सर्वदा अपूर्ण ही कहे जायँगे। 'तब नहीं अब' में प्रताप और हेमा ने परस्पर भाई बहन का सम्बन्ध स्थापित कर लिया है।

तीसरा वह रूप है जिसमें प्रेमी अपने प्रेम पात्र को किसी भी रूप में अपनाना नहीं चाहता और अपनी प्रेम-भावना की परितुष्टि अपने त्याग द्वारा उसकी सेवा और हितकामना द्वारा करता है। इन कहानियों के अधिकांश प्रेमी इसी श्रेणी के पाए जाते हैं। लेखक ने त्याग और सेवा भाव पर अनेक स्थानों में बड़ा ज़ोर दिया है। संभवतः त्याग को उसने प्रेम की गहराई का माप यंत्र क़रार दिया है। प्रेम जितना ही गहरा जितना ही सच्चा होगा त्याग की मात्रा उतनी ही अधिक होगी। 'अंगूठी' वाली कहानी में सन्यासी महेन्द्र ने अंत में कहा :—"भाई त्याग ही तो प्रेम है" अपने पुत्र धीरेन्द्र को समझाते हुए बैरिस्टर रामसिंह कहते हैं :—

त्याग प्रेम का आदर्श है

"ज़ोहरा के प्रेम को प्राप्त करने के लिए आवश्यक नहीं है कि ज़ोहरा को प्राप्त करो। यह तो स्वार्थ है। प्रेम के लिए त्याग करना होता है।"

धीरेन्द्र ने ज़ोहरा से कहा :—

× × × मैंने सब से भारी चीज़ जो मेरे पास थी उसको त्याग कर तुम्हारा प्रेम पाया है। तुम भी जो तुम्हारे पास सब से प्यारी चीज़ हो उसको त्याग दो तो मैं तुमको मिल जाऊँगा, तुम सब से अधिक मेरे इस शरीर को चाहती हो इस मोह को त्याग दो तब मैं तुमको मिल जाऊँगा।

मेरा ख्याल है लेखक ने त्याग को ही प्रेम का आदर्श रखा है।

शिक्षित समाज में लेखक ने एक ऐसे स्वच्छंद वातावरण की कल्पना की है जहां युवक और युवतियों के पारस्परिक सम्मिलन में किसी प्रकार

की बाधा नहीं दिखाई पड़ती। विश्व विद्यालय में

स्वच्छंद वातावरण विपिन, कमला और इन्दिरा बड़ी आज़ादी के साथ

मिलते जुलते हैं कमला इंदिरा को लेकर होस्टल में

विपिन के कमरे में बेधड़क दाख़िल होता है। इसी प्रकार न केवल कालेज में बल्कि घर पर भी ज़ोहरा और धीरेन्द्र बिल्कुल अबाध रीति से मिल जुल सकते हैं। मोहन के विलायत जाने पर चंद्रकला सुरेश के साथ एकांत बँगले में रही आती है, किसी को आपत्ति नहीं होती।

विपिन इंदिरा को दशहरे की छुट्टी में घर से लिखता है:—

'प्यारी इंदिरा,

कुछ रात शेष रहने पर ही मैं स्टेशन के लिए चल पड़ा। लालसा लगी रहने पर भी तुमसे न मिल सका—कारण कुछ नहीं, तुम्हें सोते समय जगाना उचित न समझा।'

इससे मालूम होता है कि रात को किसी समय भी विपिन इंदिरा से मिल सकता था।

इसी प्रकार हेमी और प्रताप गंगा तट पर रात में भी ड्यूटी देते हुए दिखाई पड़ते हैं।

लेखक के आज़ाद व्यवहारों की कल्पना कहीं कहीं पर सीमा को पार कर गई है। मालूम होता है इन मिलने जुलने वालों में पारस्परिक चुम्बन का व्यवहार भी होता था। विपिन ने अपने दूसरे पत्र के अन्त में इन्दिरा को लिखा है :—

सप्रेम चुम्बन

× × ×

मुझे खेद-पूर्वक लिखना पड़ता है कि स्त्रियों के प्रति लेखक की धारणा अच्छी नहीं मालूम पड़ती। चरित्र की जो महिमा कहानियों के नायकों में नज़र आती है उसका चतुर्थांश भी नायिकाओं में नहीं पाया जाता। लगभग १६ कहानियों में केवल दो या ज़्यादा से ज़्यादा तीन नायिकाओं ने स्त्री समाज की लाज रखी है वरन् कहानी के पाठकों के सामने अधिकांश स्त्रियों के दूषित चित्र खींचे गए हैं।

स्त्रियों के प्रति धारणा

हेमी और चंदा के चरित्रों का चित्रण लेखक ने उदारता के साथ किया है। अपने और प्रताप के पारस्परिक संबन्ध को जान्ह्वी का सा उज्ज्वल रूप देने का श्रेय हेमी को ही है।

प्रताप अपनी दुर्बलता को अधिक देर तक न छिपा सका। व्यग्र होकर पूछा।

'हेमी तू मुझे क्या समझ कर प्यार करती है?' हेमी—वही जो कृष्णा ने कृष्ण को समझ कर किया था। भाई प्यारा भाई × × ×

इसी प्रकार चंदा ने अपने जीवन की बलि देकर मर्य्यादा की रक्षा की। "उसके पिताजी अफ़ीम खाते थे। चंदा ही उसे रखती थी। उसने एक ग्लास में शर्बत बनाया, प्रकाश का ध्यान कर पी गई। एक काग़ज़ पर कुछ लिखा। पलँग पर मुंह ढाप कर सो गई। फिर कभी न उठी।"

इन दो और किसी क़दर ईसाई लड़की ग्रेसी को छोड़कर शेष स्त्रियों के चरित्र बहुत संतोष-जनक नहीं हैं। प्रभा अपने पूर्व पति की स्मृति को भुलाकर प्रोफ़ेसर साहब के साथ चैन के दिन बिता रही थी। शीला महेंद्र को भूल कर प्रेमानन्द के साथ दाम्पत्य का सुख लूट रही थी। चंद्रकला ने अपने पति की अनुपस्थिति में उसके मित्र सुरेश का गर्भ धारण किया। ज़ोहरा ने धीरेन्द्र को इसलाम ग्रहण करने पर मजबूर किया। सरला बड़ी ईर्षालु प्रकृति की स्त्री है। शांता की चंचलता और भोग लालसा चरित्र के पलड़े में उसे हल्का कर देती है। किरण की ईर्षा ने उससे वे दानवी कार्य कराए जिससे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। इंदिरा का कमला के हाथ में कठपुतली बन जाना उसे सुशोभित नहीं करता। नलिनी का अपने पति को छोड़ कर किशोर के घर जा बैठना उसे लोगों की नज़रों से गिरा देता है। वीरेन्द्र की विमाता का लोगों के भड़काने से अपने पुत्र की नीयत पर हमला करना उसकी दुर्बुद्धि का द्योतक है। पद्मा का आचरण और मैनेजर के साथ उसका संबंध काफ़ी संदिग्ध मालूम होता है।

बाद इस निर्णय पर पहुँचे हैं और जिनमें इतना सामर्थ्य है कि वे बाधाओं को कुचल दें विरोधों को नष्ट कर दें। समाज में विशेषतः शिक्षित समाज में यह समस्याएं रोज़ाना पेश हो रही हैं और लोग अपने अपने ढंग से उनका हल निकाल रहे हैं। वही समस्या और उनके हल के मुख़्तलिफ़ तरीक़े इन कहानियों के लेखक ने अपनी इस कृति में पेश किया है। ज़रूरत है कि समाज के ठेकेदार इन प्रश्नों पर निस्संकोच विचार करें और अपने जर्जर नियमों की ठठरी को दूर फेंक कर नए और उपयुक्त नियमों का निर्माण करें। यह जमाना वैयक्तिक स्वाधीनता का है। धर्म और समाज किसी व्यक्ति के जीवन पर ज़रूरत से ज्यादा हावी नहीं हो सकते। विवाह और वैवाहिक जीवन के नियमों में इस दृष्टि से संशोधन होने चाहिए कि आजकल स्त्री और पुरुषों को परस्पर मिलने जुलने की बहुत अधिक आज़ादी हो गई है। सतीत्व के नाम पर वास्तविकता की आँख में धूल नहीं झोंकी जा सकती। समाज में रमेश और शांता, धीरेन्द्र और ज़ोहरा प्रताप और हेमी, सुरेश और चंद्रकला हज़ारों की संख्या में मौजूद हैं। और अगर शीघ्र ही कोई समुचित व्यवस्था न की गई तो सभ्य सनातन समाज में भी किशोर और नलिनी की संख्या शीघ्र ही बढ़ जायगी।

कर्नलगंज प्रयाग

२०-१-३१

विक्रमादित्य सिंह

एम० ए० एल-एल० बी०

अँगूठी

प्रेमानन्द और महेन्द्र में बचपन से मित्रता थी। वह बीमार हो जाने के कारण अपने मित्र के विवाह में सम्मिलित न हो सका। महेन्द्र का विवाह गर्मी की छुट्टियों में शीला के साथ हो गया। वह भी आगे पढ़ने के लिये प्रयाग आई थी। प्रेमानन्द कुछ अच्छा होते ही प्रयाग के लिये चल पड़ा। अपने आने की सूचना महेन्द्र को दे दी थी। नवदम्पति स्वागत के लिये स्टेशन पर उपस्थित थे। गाड़ी आते ही प्रेमानन्द गाड़ी से कूद पड़ा। महेन्द्र मुसकुराता हुआ खड़ा था। पर शीला को देखते ही प्रेमानन्द आश्चर्य में डूब गया। एकाएक उसके मुँह से निकल पड़ा—"अरे तुम? यह क्या?" उसका चेहरा उदास हो गया। पर अपने को सँभालते हुए उसने महेन्द्र को बधाई दी और मुस्काने की चेष्टा करते हुए शीला के गले में माला डाल दी। तीनों आदमी टाँगे पर बैठ कर मकान की ओर चल पड़े। रास्ते में प्रयत्न करने पर भी कोई कुछ बात न कर सका।

महेन्द्र अपने जीवन का लक्ष्य निश्चित कर चुका था। उसने अपना समस्त जीवन सेवा के लिये अर्पण कर दिया था। उसका एकमात्र साथी प्रेमानन्द था। स्वभाव में विरुद्धता होते हुए भी दोनों में अगाध प्रेम था। एक रोज महेन्द्र एक गाँव का निरीक्षण करने गया था। वापस आने की आशा न थी, पर काम खतम हो जाने के कारण वह शाम ही को वापस आ गया। मकान के पास पहुँच कर देखा उसके कमरे में प्रेमानन्द बैठा शीला से बातें कर रहा है। दोनों के चेहरे से आनन्द बरसा पड़ता था। वह थोड़ी देर तक चुप रहा। एकाएक उसके मुँह से निकल पड़ा कि मित्र की इतनी कड़ी परीक्षा लेना उचित नहीं। वह नौकर से जोर जोर से बातें करने लगा। प्रेमानन्द उसकी अवाज सुन कर बाहर निकल आया। महेन्द्र को नमस्ते कर उसने पूछा—तुम गाँव गये और मुझ से बताया तक नहीं। मुझे यहाँ आने पर पता चला कि तुम नहीं हो। मित्र की भोली भाली बात सुन कर महेन्द्र हँस पड़ा, कहा—तुमने तो ग्राम सुधार का काम छोड़ दिया है। दोनों मित्र बैठक में बैठकर बातें करने लगे। महेन्द्र ने पूछा—प्रेम, आखिर यह तुम्हारा क्या हठ है कि तुम अपना विवाह किसी विधवा से ही करोगे। यह तो पागलपन है।

प्रेमानन्द—यदि भारत को ग्रामसुधार की आवश्यकता है तो समाज सुधार की भी ज़रूरत है।

महेन्द्र—क्या तुम केवल सच्चे मन से इस कार्य को केवल समाज सुधार के लिये करना चाहते हो ?

प्रेमानन्द—मेरी नीयत पर सन्देह करना तुम्हें उचित नहीं। यह मेरे प्रति अन्याय करना होगा।

महेन्द्र—देखो प्रेम, तुम स्वयं अपने को धोखा न दो। यदि तुम्हें विधवा विवाह ही करना है तो सधवा विवाह ही कर डालो। समाज को इसके आदर्श की भी आवश्यकता है।

प्रेमानन्द काँप उठा। उसने कहा—विधवा विवाह सुधार है, पर सधवा विवाह व्यभिचार है। महेन्द्र इस प्रकार मेरा उपहास करना तुम्हें उचित नहीं है। उसकी आँखें डबडबा आईं।

महेन्द्र जोर से हँस पड़ा और उसे गले से लगा लिया। उसके आँसू पोंछते हुये महेन्द्र ने कहा—प्रेम, तुम नहीं जानते मैं तुम्हें कितना प्यार करता हूँ। तुम्हें प्रसन्न देखना ही मेरे जीवन की एक मात्र इच्छा है।

प्रेमानन्द कुछ न बोला। चलते समय जेब से एक अँगूठी निकाल कर महेन्द्र की अंगुली में पहना दी। उसमें लिखा था

'प्रेम'। महेन्द्र ने हंसते हुए कहा—मुझे क्यों पहनाते हो? जिसके लिये आई है वहाँ तक पहुँच जायगी। प्रेमानन्द कुछ न बोला केवल इतना कहकर चुप हो गया—'यदि तुम मुझे तनिक भी प्यार करते हो तो यह अँगूठी कभी अपनी अंगुली से न उतारना—'

महेन्द्र को उस रात देर तक नींद न आई। वह बड़ी देर तक सोचता रहा—प्रेमानन्द का जीवन नष्ट हो रहा है। वह लक्ष्य हीन पथिक की भाँति इधर-उधर भटक रहा है। बहुत कुछ सम्भव है कि उसका समस्त जीवन इसी प्रकार बीते। पर अपने मित्र को रोते देख कर क्या मैं हँस सकता हूँ। यह भी सम्भव है कि आज कल के प्रेमियों की भाँति उसको अनुचित उपायों का आश्रय लेना पड़े! पर उसकी कल्पना मात्र से हृदय फटने लगता है। परमेश्वर मेरे मित्र की रक्षा कर। मेरे हृदय में बल दे। उसने देखा शीला बगल में सो रही है। उसके सुन्दर स्वच्छ चेहरे पर विषाद की रेखायें हैं। वह अधिक देर तक उसकी ओर न देख सका।

महेन्द्र अभी कुछ निश्चय न कर सका था कि उसके संघ ने समस्त भारत में भ्रमण कर किसानों की दशा का अध्ययन करने का निश्चय किया। इस कार्य का भार महेन्द्र पर रक्खा गया।

आज्ञा मिलते ही महेन्द्र देश दशा का ज्ञान प्राप्त करने के लिये चल पड़ा। शीला का भार प्रेमानन्द पर छोड़ा गया। उसने चलते समय प्रेमानन्द से कहा—देखो प्रेम! अब तुम बच्चे नहीं रहे। पता नहीं मैं कितने दिनों में वापस आऊं? मैंने ऐसा प्रबन्ध कर दिया है कि संघ से बराबर १००) मासिक शीला को मिलता जायगा। तुम उसके संरक्षक हो। लाज समाज के डर से अपने कर्तव्य से पीछे न हटना। वही काम करना जिसके लिए तुम्हारा हृदय गवाही दे। समाज तो व्यक्तिगत विकाश के विरुद्ध केवल एक षड़यन्त्र है। तुम वही काम करना जिससे तुम्हें और शीला दोनों को आनन्द हो और तुम लोगों का विकाश हो। यदि कोई भूल हो जाय तो जीवन भर उसके लिये रोने की अपेक्षा उसको ठीक कर लेना ही उचित है। मेरे लिए कुछ चिन्ता न करना। मैं किसी न किसी रूप में बराबर तुम्हारे पास रहूँगा। मेरी केवल यही एक इच्छा है कि तुम सुखी रहो।

गम्भीर महेन्द्र भी अपने को रोक न सका। उसका गला भर आया। प्रेमानन्द बिलख कर रो पड़ा।

२

महेन्द्र को गये करीब ६ मास हो गये थे। वह पंजाब भ्रमण कर गुजरात में घूम रहा था। शीला के पत्र बराबर

मिलते थे जिनके द्वारा वह मानव हृदय का अध्ययन करता था। प्रेमानन्द अब महेन्द्र के ही मकान पर रहने लगा था। शीला को अकेली छोड़ना उसने उचित न समझा। दोनों में खूब विवाद होता। साहित्य का अध्ययन होता। एक रोज़ प्रेमानन्द ने शीला से पूछा—क्यों शीला तुम्हें कुछ उस समय की भी बातें याद हैं जब तुम कन्या पाठशाला में पढ़ती थीं और मैं बी० ए० में था। शीला का चेहरा उदास हो गया। उसने धरती की ओर देखते हुए कहा—बहुतसी बातें ऐसी हैं जिनका न याद रखना ही अच्छा होता है।

शीला—प्रेम बाबू ! अब दया कर पुरानी बातों को न उभाड़ो उनको दबी रहने दो। यदि मैं ने किसी को दुःख पहुँचाया है तो स्वयं पहले दुःख सह कर, असहाय होकर।

प्रेमानन्द—शीला ! केवल इतना कह देने से काम तो न चलेगा। तुम मेरे लिये क्या कहती हो ?

शीला—तुम विवाह कर सुखी हो, यही मेरी आन्तरिक इच्छा है। बोलो कब विवाह करोगे ?

प्रेमानन्द—जभी तुम कहोगी। तुम तो सुखी हो। दूसरे की तुम्हें क्या पड़ी है ?

शीला—प्रेम ! इतने हताश न हो। मै तुम्हारे प्राण से प्यारे मित्र की सेवा कर रही हूँ। इससे तुम्हें आनन्द नहीं होता ?

प्रेमानन्द—यदि इससे तुम्हें आनन्द होता है तो मैं भी खुश हूँ।

शीला—जो बात अपनी शक्ति के परे है उसके लिये प्रयत्न करना व्यर्थ है।

प्रेमानन्द—शीला ! दुनियां में कोई भी चीज़ शक्ति के परे नहीं है। जो जिसकी चीज़ है उसी को मिलैगी। संसार की क्षुद्र शक्तियां उसमें बाधा नहीं डाल सकतीं।

शीला कांप उठी। उसका हृदय धड़कने लगा। उसे ऐसा मालूम पड़ता था कि वह एक प्रबल धार में बही जा रही है प्रयत्न करने पर भी वह नहीं रुक सकती। महेन्द्र से वह भक्ति करती है। उनकी पूजा करती है। उनकी उच्च भावनाओं और सेवा धर्म को आदर और श्रद्धा की दृष्टि से देखती है। वही उसके अधार हैं, देवता हैं। पर देवता, इतनी कड़ी परीक्षा क्यों ? यहाँ क्यों छोड़ गये ? जान कर अनजान क्यों बने ! आह प्यास से तड़पते हुए प्राणी को दरिया के किनारे लाकर क्यों खड़ा कर दिया ? तुम क्या चाहते हो ?

तुम्हारी क्या इच्छा है ? वह रो पड़ी। उसे रोते देखकर प्रेमानन्द को बड़ा दुख हुआ। उसने समझाते हुए कहा—शीला, तुम उदास न हो। मैं तुम्हारी रक्षा करूंगा। इससे अधिक मैं कुछ नहीं कह सकता। शीला ने करुणा भरी दृष्टि से प्रेमानन्द को देखते हुए कहा—अपने भाई को बुला दो।

प्रेमानन्द ने कहा—मैं आज ही उन्हें आने के लिये लिखूंगा। वे आजकल गुजरात में भ्रमण कर रहे हैं। वहाँ पर बाढ़ के कारण बड़ी हानि हुई है। शायद ही वे ऐसे समय में आवें। पर मैं उनको लिखूंगा। देखो, आज का समाचार-पत्र कहाँ है ? भाई साहब का भी कुछ समाचार दिया है या नहीं !

पत्र मेज़ पर पड़ा था। शीला उसको खोलकर पढ़ने लगी गुजरात का हृदयद्रावक हाल पढ़ कर उसे बड़ा दुख हुआ। पर एकाएक उसके हाँथ कंपने लगे। उसके हाथ से पत्र गिर पड़ा। वह ज़ोर से रो पड़ी। प्रेमानन्द चकरा गया। उसने पत्र उठा लिया। काली लकीरों के बीच लिखा था—

"सच्चे सेवक महेन्द्र जी का स्वर्गवास। वे अपना जी होम कर बाढ़ से पीड़ित गरीब किसानों की सेवा कर रहे थे। एक

नाव धार में पड़ कर उलट गई। उसके आदमियों को बचाने के लिये वे कूदे पर धार में स्थिर न रह सके और सदा के लिये उसी में विलीन हो गये। सच्चे सेवक के उठ जाने से संघ की अमित हानि हुई है।"

३

स्वामीसेवक को प्रयाग आये करीब १०, १२ रोज हो गये। वे ग्राम-सुधार के ऊपर कई व्याख्यान भी दे चुके थे। गुजराती ब्राह्मण थे सेवा के लिये सन्यास ले लिया था। एम० ए० की परीक्षा पास कर चुके थे। प्रयाग में गंगा के किनारे उन की रम्य कुटी थी। कई महीने रहने और यहाँ के किसानों की दशा का अध्ययन करने का बिचार था। सबेरे किसी न किसी गाँव को चले जाते वहाँ दिन भर किसानों के साथ रहते उन की दवा दारू करते और उन को संसार की बातें बताते। गठीला, दोहरा बदन था और भव्य चेहरा। प्रोफेसर प्रेमानन्द उन से कई बार मिल चुके थे। वे विश्वविद्यालय में अर्थ शास्त्र के अध्यापक हो गये थे। अपने मित्र की यादगार में उन्होंने भी ग्राम संगठन का कार्य्य आरम्भ कर दिया था। स्वामीसेवक को बड़ी पूज्य दृष्टि से देखते थे। उन्होंने स्वामी जी को अपने यहाँ निमंत्रित किया। शाम को स्वामीसेवक-प्रेमा नन्द के मकान पर गये। साफ़ सुथरा घर था। फुलवारी

लगी हुई थी। फूल खिले हुये थे। चार वर्ष का एक बालक वहीं पर खेल रहा था। देखने में बड़ा ही सुन्दर था। स्वामीसेवक उस को उठा कर खेलाने लगे। शीला ने बाहर आकर स्वामी जी का स्वागत किया। शीत में जो कली मुर्झा गई थी बसन्त आने पर खिल गई थी। तीनों आदमी भोजन करने बैठे। आन्दन पूर्वक सबने भोजन किया स्वामीसेवक को आज बड़ा आनन्द मिल रहा था। वे बराबर बच्चे को खिलाते और खेलते थे। शीला बड़े गौर से स्वामीसेवक को देख रही थी वे भी दबी निगाह से उसे देख लेते थे। शीला ही बच्चे की माँ थी। पर प्रेमानन्द को स्वामी सेवक का यह व्यवहार अच्छा न लगा। उसने मन में कहा—केवल कपड़ा रंग लेने से कुछ नहीं होता हृदय भी पवित्र होना चाहिये। हँसते हुये पूछा "कहिये स्वामी जी आप को सन्यास लिये हुये कितने रोज हुआ ?"

स्वामी सेवक मुस्कुरा पड़े। वे प्रोफेसर साहब का मतलब समझ गये। बोलो—प्रोफेसर साहब अभी बहुत रोज़ नहीं हुआ। ६,७ वर्ष हुये होंगे।

प्रो—आप का मकान तो गुजरात ही में है ? घर में और कोई भी है ?

स्वामी—समस्त विश्व ही सन्यासी का घर है। और समस्त प्राणी उसके सम्बन्धी।

प्रो—आज कल्ह के सन्यासी तो रिश्ता लगाने में बहुत चतुर होते हैं।

स्वामी—पर प्रोफेसरों से कम।.........अच्छा फिर मिलूँगा कह कर स्वामीसेवक चल पड़े। स्वामीसेवक के प्रति प्रेमानन्द की श्रद्धा शिथिल पड़ गई। उन्होंने शीला से कहा। मालूम होता है कि मनुष्य स्वभाव सिद्धान्तों और आदर्शों से भी प्रबल है।

शीला ने कुछ उदास होकर कहा—किसी के स्वभाव के विषय में इतनी शीघ्र धारणा कर लेना उचित नहीं। कभी कभी गुदड़ी में लाल छिपे रहते हैं।

प्रेमा—ठीक है। पर कभी कभी सुन्दर चमकते हुये हीरे भी काँच निकल जाते हैं।

निमंत्रण के पश्चात से स्वामीसेवक के कार्य्य क्रम में कुछ अन्तर आ गया था। वे अब गाँव कम जाते और घूम फिर कर एक बार प्रोफेसर साहब के दरवाजे पर आ जाते। वे उनके बालक बीरू को बहुत प्यार करते थे। कभी उसके लिये गेंद ले आते और कभी रंग बिरंगी तसवीर। दो तीन बार इच्छा हुई कि शीला से भी मिलें पर फिर कुछ सोच कर न मिले। बालक

बीरू भी सन्यासी दादा को बहुत प्यार करता था। एक रोज स्वामी सेवक ने प्रोफेसर साहब से कहा कि प्रोफेसर साहब आप इस बालक को मुझे दे दीजिये मैं इसको देश के लिए तैयार करूँगा। प्रेमानन्द ने चिढ़ कर कहा :—

"बेहतर है मेरे बालबच्चों की जिम्मेवारी लेकर मेरा भार हलका कर दीजिये।"

स्वामी सेवक की आँखे लाल हो गईं पर झट से अपने को संभाल कर बोले "बहुत दूर तक सोच कर इस भार को कंधे से उतार दिया है। अच्छा चलता हूँ।"

शीला ने चाहा कि सन्यासी को रोकें पर हिम्मत न पड़ी। वह चुप चाप बैठी रही।

४

शीला की तबियत इधर कई रोज़ से ख़राब थी। स्वामी सेवक को देखकर उसको पुरानी बातों का स्मरण हो जाता था। वह न मालूम क्यों उनकी ओर देख न सकती थी। शाम का समय था, प्रेमानन्द और शीला घूमने चल पड़े साथ में बीरू भी था। दोनों आदमी जाकर मिन्टोपार्क में बैठ गये। सामने जमुना बह रही थी। बड़ा सुहावना दृश्य था। दोनों बैठे प्रेम की विवेचना कर रहे थे और अपने गत जीवन की आलोचना। बालक बीरू नदी के किनारे खेल रहा था। कभी दौड़ कर इस

पौधे के पास जाता और कभी दौड़ कर उसके पास। जमुना का किनारा ऊँचा था। बालक बार बार पानी को छूना चाहता था पर वह छू न सकता था। एकाएक उसके पैर डगमगा गये। बच्चा जमुना में गिर पड़ा प्रेमानन्द और शीला आवाज़ सुनते ही चौंक पड़े। दोनों किनारे की ओर दौड़े पर बालक का कुछ पता न था। शीला कूदने ही वाली थी प्रेमानन्द ने उसको पकड़ लिया। वह बेहोश हो गई। इतने में बड़े ज़ोर से पानी में फिर से आवाज़ हुई। एक आदमी बड़े वेग से तैरता हुआ दिखाई पड़ा। प्रेमानन्द बिलकुल भौचक्के से हो गये। कुछ देर बाद वे कुछ सुस्थिर हुये। उन्होंने शीला को उठा लिया और उस पर हवा करने लगे। उसको भी कुछ होश आया। वह रोने लगी। इतने में मूर्छित बच्चे को लिये हुये स्वामी सेवक ऊपर आते हुये दिखाई पड़े। कूदने से उनके सर में चोट लग गई थी जिससे खून निकल रहा था। पर उनको उसका कुछ भी ध्यान न था। बच्चे को देखते ही प्रेमानन्द और शीला उनकी ओर दौड़ पड़े। पास पहुँच कर प्रेमानन्द ने पूछा कि क्या डाक्टर को बुलाऊँ, गाड़ी खड़ी है। स्वामी सेवक ने मुस्क्याते हुये कहा इतनी छोटी बात के लिये डाक्टर के बुलाने की जरूरत नहीं है। वे बच्चे को लेटा कर साँस ले आने का प्रयत्न करने लगे। वे इस में कुशल थे। स्वामीसेवक और

शीला बच्चे के उपचार में लगे थे पर प्रेमानन्द बड़े ध्यान से स्वामी सेवक को देख रहे थे। पानी में धुलने से चेहरा और भी निखर उठा था। उनको चेहरा कुछ पहचाना हुआ मालूम पड़ता था। इतने में बच्चे को होश आ गया। स्वामीसेवक आनन्द से उछल पड़े। उसे उठा कर छाती से लगा लिया, और प्रेमानन्द के हाँथ में देते हुये बोले "भाई लो अपनी चीज़"। बालक को लेते हुये प्रेमानन्द ने देखा कि स्वामीसेवक के हाँथ में एक सोने की अँगूठी है। उसमें कुछ लिखा है। उन्होंने स्वामी सेवक का हाँथ पकड़ लिया। अँगूठी में लिखा था 'प्रेम'। वह चौंक पड़ा "भैया महेन्द्र यह क्या छल।" महेन्द्र खड़ा मुस्कुरा रहा था उसने प्रेमानन्द को गले से लगा लिया। उसको प्यार करते हुये कहा "कुछ नहीं"

प्रेमानन्द ने फिर से पूछा तुमने यह छल क्यों किया ?

महेन्द्र—छल कहाँ भूल सुधारने का एक छोटा सा प्रयत्न किया है। तुम मेरे मित्र हो तुम्हें आनन्द में देखना ही मेरे जीवन का लक्ष्य है उसके लिये केवल यही उपाय था। तुम्हें अपनी प्रतिज्ञा याद है ? प्रेम मैं तुम्हें प्यार करता हूँ।

प्रेमानन्द—पर उसके लिये इतना त्याग।

महेन्द्र—"भाई त्याग ही तो प्रेम है।"

पवित्र-स्मृति

पवित्र-स्मृति

मोहन को विलायत गये हुये एक वर्ष से ऊपर हो गया। उसके परिवार का सम्पूर्ण भार सुरेश के ऊपर है। सुरेश और मोहन में बचपन ही से मित्रता थी। दोनों ने साथ ही गुरु जी की छड़ियाँ खाईं थीं और साथ ही दोनों प्रोफेसर साहब के प्रेम पात्र बने थे। कालेज की पढ़ाई समाप्त कर मोहन लंदन चला गया। चन्द्रकला ने भी मोहन के साथ जाना चाहा पर वह न जा सकी। मोहन ने उसकी शिक्षा और रक्षा का भार सुरेश के ऊपर रक्खा। चन्द्रकला प्रयाग के एक प्रसिद्ध महिला विद्यालय में बी० ए० क्लास में पढ़ती थी। उसकी शादी मोहन के साथ जब वह इन्टर क्लास पास हुई थी तभी हो गई थी। मोहन स्त्री शिक्षा का पक्षपाती था। इसलिये उसकी शिक्षा में किसी प्रकार का व्यतिक्रम नहीं पड़ा। विद्यालय में उसकी धाक थी। शिक्षिकाओं को उस पर नाज़ था। चन्द्र-कला गाने में भी बड़ी प्रवीण थी। सुरेश का गाने की ओर

विशेष झुकाव था। इतवार को जब वह छात्रालय से मोहन के पास आती तो सुरेश उसका गाना सुनने के लिये अवश्य पहुँचता। वह उसको प्रोत्साहन देता। एक एक गाने को दो दो बार गवा कर सुनता और झूमता। कभी कभी मोहन से इसके ऊपर विवाद हो जाता था। मोहन का कहना था कि उसके पास गाने बजाने का समय नहीं है। उसका देश रसातल को जा रहा है, विदेशी रक्त की अन्तिम बूँद तक चूसे ले रहे हैं। यह समय गाना गाकर अपने को भूल जाने का नहीं है। सुरेश हँस कर कहता—'मोहन भाई तुमको तो सन्यासी होना चाहिये था, इस प्रपञ्च में कैसे फँस पड़े? बेचारी भाभी का खून कर रहे हो।' मोहन कहता—'हर्ज क्या—तुम तो मेरी कमी पूरी करने के लिये हो ही।' सुरेश शरमा जाता, चन्द्रकला के कपोलों पर लाली दौड़ जाती। दोनों की आँखें झुक जातीं। एक छोटे से नाटक का अभिनय हो जाता।

२

मार्च का महीना था। परीक्षा के दिन अङ्गुलियों पर थे। विद्यार्थी जीवन में इससे कठिन अवसर कभी नहीं आता, चन्द्रकला का पूरा साल गाने बजाने में चला गया था। वह एक बार घबड़ा उठी पर सुरेश के प्रोत्साहन देने पर परीक्षा के लिये तैय्यार हो गई। पुस्तकों से चिपक गई। न तो नहाने का ख्याल

था और न खाने का ध्यान, न घूमने का समय था और न सोने का अवसर। उसके प्यारे बाजे जिसे वह प्राणों से अधिक प्यार करती थी एक कोने में पड़े अपने भाग्य को रोते और परीक्षा को कोसते थे। परीक्षा के केवल सात रोज़ बाकी थे। चन्दा बहुत कुछ तैय्यार हो चुकी थी। उसके सिर में दर्द था असह्य होने पर किताब रख कर सोगई। रात में उसे वेग के साथ ज्वर आ गया। सवेरे डाक्टर आये; बहुत कुछ दवा दी पर ज्वर का वेग धीमा न पड़ा। सुरेश खाना पीना छोड़ कर चन्दा के पास रहने लगा। पानी पिलाता तो सुरेश, और दवा देता तो सुरेश। कभी वह सर दबाता तो कभी तलवे सहराता। कभी नाड़ी की गति देखता तो कभी हृदय की धड़कन। परीक्षा समाप्त हो गई पर रोगी की हालत में कुछ भी अन्तर न पड़ा। वैद्य और डाक्टर परेशान थे। धीरे धीरे रोग ने क्षई का रूप ले लिया। डाक्टर ने अपना अनुमान लेडी प्रिंसिपल से कहा। वे घबड़ा गईं। चन्द्रकला को शीघ्र बोर्डिङ्ग से हटाना चाहिए। पर वह कहाँ जायगी। मोहन है नहीं; घर वाले उसको अलग कर चुके हैं। वे यह सोच ही रही थीं कि इतने में सुरेश आ गया। वह उसी रोज़ चन्दा को अपने साथ गङ्गा के किनारे एक सुन्दर मकान में ले गया। प्राणों की बाज़ी लगा कर उसकी सेवा करने लगा। चन्दा को अपनी बीमारी का पता लग चुका

था। वह सुरेश को अपने पास आने से रोकती पर वह कुछ न मानता। वह कहता कि मेरे लिये वह अहो भाग्य का दिन होगा जिस रोज़ मैं बीमार पड़ जाऊँगा, चन्दा रो पड़ती। अपने दुर्बल हाथों को उसके कन्धे पर रख कर कहती, 'मेरे सुरेश, यदि अपने लिये नहीं तो कम से कम मेरे लिये तो तनिक अपना ख्याल रखा करो। यदि मान लो, परमेश्वर न करे, तुम्हें कुछ हो जाय तो मेरी क्या दशा होगी ?' सुरेश मुस्कुरा कर कहता, 'अच्छा होगा। रास्ते से काँटा दूर हो जायगा।' चन्दा उसको तनिक अपनी ओर खींचती हुई कहती—'तुम मेरे लिये काँटा हो ?' सुरेश गम्भीर हो कर कहता, 'चन्दा, तुम शीघ्र अच्छी हो जावो नहीं तो मैं मोहन भाई को क्या जवाब दूँगा। मेरे लिये तुम कुछ चिन्ता न करो। मेरे लिये कोई रोने वाला नहीं है।' चन्दा रो पड़ती, सुरेश का सर उसके वक्षस्थल पर गिर पड़ता।

२

चन्दा को अच्छी हुये क़रीब चार पाँच मास हो गये। डाक्टर जवाब दे चुके थे। उसके घरवाले निराश हो चुके थे। वह स्वयं अपने जीवन से ऊब गई थी। पर सुरेश की सेवा ने उसे बचा लिया। यह उसका पुनर्जन्म था। एक रोज़ शाम को दोनों आदमी ऊपर छत पर बैठे हुये बातें कर रहे थे। सुरेश

का स्वास्थ्य बहुत गिर गया था। वह बहुत ही दुबला हो गया था। डाक्टर का अनुमान था कि उसके शरीर में भी रोग के कीटाणु प्रवेश कर गये हैं। चन्दा उसके ऊपर स्वास्थ्य की ओर ध्यान न देने के कारण बिगड़ रही थी। सुरेश चुपचाप बैठा हुआ सुन रहा था, उसको इसी में आनन्द आ रहा था। अंत में सुरेश ने लम्बी साँस लेकर कहा, 'यह सब मैं किसके लिये करूँ।' चन्दा ने मत्था सिकोड़ कर कहा,—'मेरे लिये' सुरेश ने चन्दा का हाथ पकड़ कर अपनी आराम कुर्सी पर खींच लिया। दोनों चुपचाप थे। चन्दा का सर सुरेश की छाती पर था। दोनों की आखों से आँसुओं की धारा बह रही थी। पर एक में प्रेम था और दूसरी में कृतज्ञता। सुरेश ने अपने गले को साफ़ कर कहा, 'चन्दे, मैंने तुम्हारी रक्षा की है, जानती हो क्यों?' चन्दा ने सिर को उसी प्रकार रखे हुये कहा, 'हाँ जानती हूँ।' सुरेश ने उसके सर पर हाथ फेरते हुये कहा, 'चन्दा, वह मेरा धर्म था।' "नहीं वह तुम्हारा प्रेम था"—एक साँस में चन्दा कह गई। चोर पकड़ा गया। सुरेश के हृदय में एक हूक उठी। उसने चन्दा को अपने हृदय से लगा लिया। धीमे स्वर में पूछा—'क्या तुम इसको जानती हो?' उससे भी धीमे स्वर में उत्तर मिला, 'इससे भी अधिक।'

सुरेश—पर यह अनुचित है जो बात हो ही नहीं सकती उसकी कल्पना से क्या लाभ ?

चन्दा—क्या नहीं हो सकती ?

सुरेश—तुमसे प्रेम करने का मुझे कोई अधिकार नहीं।

चन्दा हँस पड़ी उसने कहा—'सुरेश, सारे संसार के प्राणियों को एक दूसरे से प्रेम करने का अधिकार है। सुरेश कुछ न बोला, वह चुपचाप सोचता रहा। चन्दा ने उसके गले में हाथ डाल कर पूछा, 'बोलो तुम क्या सोच रहे हो ?'

सुरेश—तुम्हारी बात।

चन्दा—क्या मैंने सच नहीं कहा है ?

सुरेश—तुम्हारी बात मैं समझ तो जाता हूँ पर उसके अनुसार कार्य्य नहीं कर सकता। मैं उसी को प्यार कर सकता हूँ जो मेरा हो।

चन्दा—(मुस्कुराते हुये) यह तो झूठ कह रहे हो।

सुरेश शरमा गया। धीरे से चन्दा के गाल पर एक लप्पड़ मारते हुये कहा—'यदि मेरा न हो तो कम से कम आशा हो कि वह मेरा हो जायगा।

चन्दा—यदि यह असम्भव हो तो ?

सुरेश—तब मैं उसको प्यार न करूँगा।

चन्दा—क्या यह तुम्हारे बश की बात है ?

सुरेश—अपने को नष्ट कर देना-मेरे बस की बात है, चन्दा मैं दो के बीच में तीसरे को नहीं चाहता। मैं पूर्ण का पुजारी हूँ, टुकड़ों से शान्ति नहीं मिल सकती। या तो मैं सम्पूर्ण लूँगा या तो कुछ भी न लूंगा।

चन्दा—तुम स्वार्थी हो।

सुरेश—मैं महान स्वार्थी हूं पर भिखारी नहीं। चन्दा स्वार्थी मनुष्य ही बलिदान कर सकता है। वह आत्म समर्पण कर देता है।

चन्दा—किस के लिये ?

सुरेश—अपने स्वार्थ के लिये। अपने ध्येय के लिये। अपने प्रेम-पात्र के लिये।

चन्दा—तो तुम मुझे प्यार नहीं करोगे ?

सुरेश रो पड़ा, बच्चों की तरह रो पड़ा पर शीघ्र अपने को सँभालते हुये कहा—'चन्दा, मैं इस प्रश्न का उत्तर नहीं देना चाहता मुझे क्षमा करो।'

वह एक दम उठकर खड़ा हो गया। चन्दा ने उसका हाथ पकड़ कर बैठाते हुये कहा—'उत्तर देने की कोई जरूरत नहीं। मैं इसका उत्तर जानती हूँ। आओ मैं तुम्हारी हूँ।'

४

मोहन को विलायत से वापस आये हुये क़रीब सात रोज हो गये। वह आज ससुराल आया है। चन्दा भी अपने घर ही

पर है। सुरेश के आकस्मात ग़ायब हो जाने पर उसको विवश होकर घर आना पड़ा था। उसने सुरेश का पता लगाने के लिये बहुत प्रयत्न किया था पर कुछ पता न लगा। सम्भवतः इस संसार में वह था ही नहीं। रात्रि का समय था। मोहन अपने कमरे में कुर्सी पर बैठा हुआ अख़बार पढ़ रहा था। रह रह कर उसकी नज़र कमरे के बाहर चली जाती थी और कान किसी के शब्द सुनने के लिये आतुर हो जाते थे। घड़ी में क़रीब ग्यारह बज गये। घर के सब प्राणी सो गये। पर तब भी उसकी इच्छा पूरी न हुई। वह बड़े आश्चर्य में था, इतने में उसे कमरे के बाहर से सिसकने की एक धीमी आवाज़ सुनाई पड़ी। वह चौंक उठा। वहाँ जाकर देखा कि मैली सी साड़ी पहने हुये एक स्त्री अपने सर को घुटनों से दबाये हुये बैठी है। उसने बटन दबाया, रोशनी हो गई। अरे यह तो चन्द्रकला है। वह रोते हुये मोहन के पैरों पर गिर पड़ी। मोहन ने उसे उठा लिया। सुन्दर सुकोमल लता पाला मार गई थी। वह उसे अपने हृदय से लगाने ही वाला था कि चन्द्रकला ने उसे रोक दिया। वह रोती हुई बोली, 'नाथ मुझे क्षमा करो मैं तुम्हारे योग्य नहीं। मैं केवल तुम्हारा दर्शन चाहती थी। वह मुझे मिल गया। मैं अब सुख से मर सकूंगी।'

मोहन ने उसका हाथ पकड़ कर पलङ्ग पर अपने बग़ल में बैठा लिया और उसके आँसू पोछते हुये कहा, 'चन्दा तुम इतना अधीर क्यों हो रही हो, कुछ मुझसे भी तो बतलाओ। क्या किसीने तुम्हारा कुछ अपमान किया है ?'

चन्दा—नहीं मैंने तुम्हारा अपमान किया है। क्षमा करो।

मोहन मुसकरा पड़ा, उसका हाथ पकड़ कर कहा—'तुम मेरा अपमान कर ही नहीं सकतीं तुम मेरी हो।'

चन्दा—नहीं मैं तुम्हारी नहीं हूँ।

मोहन—पर मैं तो तुम्हारा हूँ। इसकी मुझे चिन्ता नहीं कि तुम मेरी हो या नहीं।

चन्दा—सच कहते हो ?

मोहन—प्रेम में झूठ कहाँ।

चन्दा—नाथ मैं अपवित्र हूँ।

मोहन—मैं तुम्हारी पवित्रता के लिये तुम्हें प्यार नहीं करता।

चन्दा—मैं अयोग्य हूँ।

मोहन—मुझे तुम्हें नौकर नहीं रखना है।

चन्दा अपने आवेग को रोक न सकी। चिल्ला कर बोली—

'चाहे मैंने कितना ही भारी पाप किया हो पर तब भी तुम मुझे प्यार करोगे ?'

मोहन हंस पड़ा। उसने उसके सर पर हाथ फेरते हुये कहा, 'चन्दा, मैं तुम्हें प्यार करता हूँ, तुम्हारे गुण अवगुण या पाप पुण्य को नहीं ! तुम से भी अधिक गुणी या पवित्र प्राणी संसार में हैं पर उनसे मेरा कुछ मतलब नहीं। तुम से भी सुन्दर स्त्रियाँ संसार में हैं पर मेरे हृदय में उनके लिये स्थान नहीं। मेरा प्रेम किसी पर अवलम्बित नहीं वह स्वयं पूर्ण है। वह कुछ बदला नहीं चाहता। यदि तुम न रहो तो भी मैं तुमको ऐसा ही प्यार करता रहूंगा। तुम मुझे छोड़ सकती हो पर मैं तुमको नहीं छोड़ सकता। शान्त होओ। छोटी छोटी बातों से अपने को दुःखी मत करो।'

चन्दा फिर से रो पड़ी। मोहन के पैरों पर गिर पड़ी। सिसकते हुये कहा, 'नाथ मेरे ४ चार मास का गर्भ है',—वह आगे कुछ न बोल सकी।

मोहन ने उसे उठाकर हृदय से लगा लिया। उसको चूमते हुये कहा, 'पगली कहीं की, इसी के लिये इतनी चिन्ता भला इससे और प्रेम से क्या सम्बन्ध ?'

चन्दा—मुझ से भूल हुई। सुरेश ने मेरे प्राणों की रक्षा की थी। मैं उनके भुलावे में आ गई। पाप पुण्य कुछ भी न समझ सकी।

मोहन—चन्दा, संसार में स्वयं कोई कार्य्य पाप या पुण्य नहीं है, तुम्हें उसके लिये दुःख है तब तुम उसको पाप कैसे कह

सकती हो। किसी कार्य्य से मनुष्य का पतन नहीं हो सकता। पतन होता है जब उसको अपने ऊपर विश्वास नहीं रह जाता। जब तक उसमें प्रयत्न की शक्ति है उसका पतन नहीं हो सकता। निश्चेष्टता को पतन कहते हैं। रह गई बात सुरेश की मैं उसको बचपन से जानता हूं। उससे अधिक सच्चा मनुष्य मिलना संसार में कठिन है। वह जो कुछ करता था वही कहता था, जो कहता था वही करता था। उस का पूरा जीवन एक संग्राम था। यदि उससे कोई भूल हो गई है जिसका कि वह प्रतिकार नहीं कर सकता तो यह सत्य है कि वह इस संसार में नहीं है। वह बीर था, मृत्यु उसके लिये खेलवाड़ थी।

चन्दा—मेरे माता पिता ने मुझे मजबूर किया कि मैं गर्भ नष्ट कर दूँ। पर मुझसे यह न हो सका। एक अपराध तो मैं कर चुकी थी—उसको छिपाने के लिये दूसरा अपराध न कर सकी।

मोहन—प्यारी चन्दा, भूल कर भी ऐसा न करना। तुम मेरी हो। मैं तुम्हारा हूं। संसार की कोई शक्ति हम लोगों को अलग नहीं कर सकती। यह बच्चा हमारी सब से प्यारी सम्पत्ति होगी। यह मेरे प्यारे मित्र की सबसे पवित्र-स्मृति है।

प्रेम ही धर्म है

प्रेम ही धर्म है

ज़ोहरा—धीरेन्द्र मेरे सर में दर्द हो रहा है।

धीरेन्द्र—तो, मैं क्या करूँ ?

ज़ोहरा—मैं घर चली जाऊँ ?

धीरेन्द्र—जैसी तबियत हो।

ज़ोहरा—तुम साथ में चलोगे ?

धीरेन्द्र—नहीं अभी हमारा पालिटिक्स का घण्टा बाकी है।

ज़ोहरा—हमारी गाड़ी नहीं आई है, चल कर मेरे लिये एक टाँगा कर दीजिये।

धीरेन्द्र—सामने चौराहे पर कई टाँगे खड़े हैं चाहे जिस पर बैठकर चली जाइये।

ज़ोहरा को धीरेन्द्र की बातें सुन कर बड़ा दुःख हुआ। वह नीचे को सर किये हुये कमरे के बाहर निकल गई। रामनाथ ने धीरेन्द्र से कहा 'यार बड़े बे मुरौवत आदमी हो। वह तो आपके पीछे पागल हो रही है और आप ऐंठे फिरते हैं।'

धीरेन्द्र—अजी हमें दुनिया में और भी काम करना है।

धीरेन्द्र कमरे से बाहर निकल कर फ़ील्ड में घूमने लगा! पर उसका जी वहाँ भी न लगा। पालिटिक्स के घण्टे में वह बैठा तो, पर पढ़ न सका। साइकिल उठा कर घर के लिए चल पड़ा। घर पहुँच कर उसने कपड़ा बदला और सीधे बैरिस्टर ज़हूर अहमद के बँगले पर जा पहुँचा। ज़ोहरा बग़ीचे में टहल रही थी। धीरेन्द्र को देखते ही भीतर जाने लगी। धीरेन्द्र ने पुकार कर कहा—मैं तुम्हारे ही पास आ रहा हूँ।

ज़ोहरा ने रूठे स्वर में कहा, 'मेरे पास क्यों—मैं आपकी कौन हूँ।

धीरेन्द्र ने हँसते हुये कहा:—'कोई नहीं'

दोनों बेंच पर बैठ कर बातें करने लगे।

ज़ोहरा ने पूछा—'भला बताओ कालेज में आज तुमने कैसी बातें कहीं? क्या तुम्हारे लिये यह उचित है?'

धीरेन्द्र—ज़ोहरा, हमारा तुम्हारा प्रेम हमारी तुम्हारी सम्पत्ति है। उसको सरे आम में लुटाने की जरुरत नहीं। तुम ने देखा नहीं जिस समय तुम कमरे में आई लड़कों का व्यवहार कैसा था। हम नहीं चाहते कि व्यर्थ में नासमझ लोग हम लोगों का मज़ाक उड़ायें।

ज़ोहरा—लोग मज़ाक उड़ायेंगे इस डर से तुम मुझ से ठीक ठीक बोलो नहीं। देखो धीरेन्द्र, मैं तुम्हारे आज के वर्ताव से

बहुत डर गई हूँ। लोग मज़ाक उड़ायेंगे कहीं इस डर से तुम मुझे छोड़ न दो।

धीरेन्द्र—मैं तुम्हें छोड़ दूंगा या नहीं। इस को तो समय ही बतलायेगा। अभी से कुछ कहना व्यर्थ है।

ज़ोहरा—समय कुछ नहीं बतलायेगा। मैं आज शाम को अब्बा से कहूंगी।

धीरेन्द्र—क्या कहोगी ?

ज़ोहरा—(शर्मा कर) क्या तुम नहीं जानते ?

धीरेन्द्र—मुझे क्या मालूम तुम क्या कहोगी।

ज़ोहरा—तो लो बताती हूँ। सुनो मैं कहूंगी कि 'तुम मेरे हो।' लो समझे।

धीरेन्द्र—वाह—बड़ी भारी बात कहोगी। और यह न कहोगी कि 'तुम मेरी हो।'

ज़ोहरा—मैं तो बहुत रोज़ हुआ तुम्हारी हो चुकी हूं।

धीरेन्द्र—मुझे भी तो बहुत रोज़ हुआ तुम्हारा हो चुका हूं।

ज़ोहरा—नहीं अभी तुम मेरे नहीं हुये। तभी तो तुम मेरे साथ आने में शर्माते हो, मुझे तो शर्म नहीं लगती।

धीरेन्द्र—अच्छा तो तुम मेरी सही पर अभी बैरिस्टर साहब से कुछ न कहना। अभी हम लोग विद्यार्थी हैं। पता नहीं इस बात से क्या बखेड़ा खड़ा हो जाय। यह बात

इतनी आसान नहीं है। जानती नहीं हो शहर में तहलक़ा मच जायगा।

ज़ोहरा—तो इससे कब तक डरोगे? यह तो एक रोज़ होगा ही।

धीरेन्द्र—तुम समझती नहीं। शायद मुझे अपना घर बार भी छोड़ना पड़े।

ज़ोहरा—यह सब मेरा घर द्वार किसका है। मेरे और कोई भी है?

धीरेन्द्र—तो क्या तुम मुझे ख़रीदना चाहती हो?

ज़ोहरा—हाँ ख़रीदना चाहती हूँ पर तुच्छ धन सम्पत्ति देकर नहीं—अपने को देकर—और तुम सौदा बेचने से इन्कार नहीं कर सकते, वादा कर चुके हो।

धीरेन्द्र—अच्छी बात है। ख़रीद लेना। पर अभी अब्बा से कुछ न कहना। प्रश्न केवल यहीं हल नहीं हो जाता। यह एक गम्भीर प्रश्न है कभी फिर बताऊँगा।

ज़ोहरा ने धीरेन्द्र को रोकना चाहा पर वह न रुका। कुछ सोचता हुआ बाहर चला गया।

२

बैरिस्टर रामसिंह ने कुछ सोचते हुये पूछा:—धीरेन्द्र जो कुछ मैं सुन रहा हूं क्या वह सच है?

धीरेन्द्र ने नीचे को सर कर के कहा :—बैरिस्टर ज़हूर अहमद के यहाँ मैंने खाना खाया है यह बात सच है।

राम सिंह—केवल यही नहीं ! तुम उनकी लड़की को प्यार करते हो ?

धीरेन्द्र का चेहरा लज्जा और संकोच से लाल हो गया। उसने सकुचाते हुये कहा:—कहने वाले ने आप से सच कहा है।

राम सिंह—क्या यह अच्छी बात है ?

धीरेन्द्र—प्रेम करना बुरी बात नहीं हैं।

राम—धीरेन्द्र, तुम मेरी अकेली सन्तान हो अपनी बुद्धि के अनुसार मैंने तुम्हें शिक्षा देने में कोई बात उठा नहीं रक्खी। वचपन से मैं तुम्हे स्वतन्त्रता की शिक्षा देता आ रहा हूँ। यदि तुमने यही निश्चित किया है तो मैं तुम्हारे रास्ते में काँटे नहीं बिछाना चाहता। चाहे मेरा हृदय चूर चूर हो जाय पर मैं जिस काम को तुम उचित समझते हो उससे तुम्हें नहीं रोकना चाहता।

धीरेन्द्र—पिता जी, क्या प्रेम करना पाप है ? क्या यह कोई बुरा काम है ? आप की शिक्षा तो थी कि समस्त विश्व को प्यार करो। क्या बैरिस्टर साहब की लड़की विश्व के बाहर है ?

राम—धीरेन्द्र संसार में सब से श्रेष्ठ प्रेम करना है। पर वह प्रेम सच्चा होना चाहिये। निष्काम होना चाहिये। किसी सुन्दर चीज़ को देख कर उसके लिये पागल हो जाना प्रेम नहीं है। क्या तुमने कभी अपने हृदय को टटोला है? उसमें कितना प्यार का अंश है और कितना वासना का?

धीरेन्द्र—मैं उसको प्यार करता हूँ। और मैं सोचता हूँ कि यह मेरा कर्तव्य है कि जिस चीज को मैं प्यार करूँ उसको प्राप्त करूँ।

राम—पर समाज तुम्हारे रास्ते में बाधक होगा।

धीरेन्द्र—यह बराबर आप की शिक्षा रही है कि जिस बात को मैं उचित समझूँ उसके करने में समाज की तनिक भी चिन्ता न करूँ। समाज के साथ न चल कर उसको अपने साथ ले चलूँ।

राम—पर यह प्रश्न केवल सामाजिक नहीं धार्मिक भी है।

धीरेन्द्र—इसमें तो मुझे धर्म की तनिक भी हानि नहीं दिखलाई पड़ती। धर्म इन छोटी छोटी बातों में नहीं रहता। फिर हिन्दू धर्म तो बहुत विशाल धर्म है। गीता में कृष्ण चिल्ला चिल्ला कर कह रहेहैं—किसी रास्ते से आवो मेरे पास पहुँचोगे। तब भला बतलाइये आप लोग मुसलमानों को क्यों इसमें शामिल नहीं करते।

राम—धीरेन्द्र, धर्म को जितना सरल तुमने समझ रक्खा है, उतना नहीं है। धर्म का मनुष्यता से अलग कोई स्थान नहीं है। प्रत्येक धर्म का अन्तिम उद्देश्य मनुष्यता का विकास है। प्रत्येक धर्म के आचार्य्यों ने समय और स्थिति के अनुसार इसको भिन्न २ रूप में समझा है। हमारे यहाँ के आचार्य्यों का मत है कि हम लोग सब एक ब्रह्म से पैदा हुये हैं और अन्त में विकास करते करते उसी में मिल जाँयगे। न कोई हिन्दू है न मुसलमान। न ईसाई न पारसी। सब उसी परब्रह्म के रूप हैं। हिन्दू धर्म में सब के लिये स्थान है पर तुम तो अब इस सनातन सत्य को त्याग दोगे। मैं यह नहीं कहता कि मुसलमान धर्म झूठ है पर वह इतना व्यापक नहीं है और उसका कारण है। जिस समय महम्मद साहब ने इसका प्रचार किया चारों ओर बर्बरता का राज था और इसीलिये अपने अनुयायियों को बचाने के लिये उनको उसे अलग करना पड़ा। जो काम मजबूर हो कर करना पड़ा था वही आज धर्म हो गया।

धीरेन्द्र—नहीं हिन्दू धर्म पर मेरा पूरा विश्वास है और मैं इसको नहीं छोड़ूँगा।

राम—धीरेन्द्र, प्रेम के विषय में भी अभी तुम्हारी धारणा ठीक नहीं, प्रेम का सम्बन्ध स्थूल पदार्थ से नहीं। तुम कहते

हो जिस चीज को तुम प्यार करते हो उसके पाने के लिये प्रयत्न करोगे पर बतलाओ यदि वह पदार्थ नष्ट हो जाय, तुम्हारी आँखों से दूर हो जाय तो तुम उसको प्यार करना भी छोड़ दोगे।

धीरेन्द्र—नहीं कदापि नहीं।

राम—तो तुम जोहरा को चाहते हो या उसके प्रेम को।

धीरेन्द्र—उसके प्रेम को।

राम—तुम जोहरा को प्राप्त करना चाहते हो या उसके प्रेम को ?

धीरेन्द्र—जोहरा के प्रेम को।

राम—जोहरा के प्रेम को प्राप्त करने के लिये आवश्यक नहीं है कि जोहरा को प्राप्त करो। यह तो स्वार्थ है। प्रेम के लिये त्याग करना होता है।

धीरेन्द्र ने कुछ जवाब न दिया। वह कुछ देर तक खड़ा सोचता रहा। उसके बाद यह कह कर बाहर चला गया कि इसका उत्तर मैं आप को सोच कर दूंगा।

३

जोहरा—धीरेन्द्र मैं कब से तुम्हारा इन्तजार कर रही हूँ। जनाब ईद के चाँद बन रहे हैं।

धीरेन्द्र—यदि ईद का चाँद जल्दी दिखाई पड़ जाय तो फिर उसको पूछे कौन ? जानती नहीं हो जो चीज़ जितनी

ही देर में मिलती है उसका उतना ही अधिक मूल्य होता है।

ज़ोहरा—ठीक है, पर तुम तो यों ही मेरे लिये बेश क़ीमत हीरा हो रहे हो।

धीरेन्द्र—तो खूब छिपा कर रख लो कहीं खो न जाऊँ।

ज़ोहरा—गले का हार बनाने की तैय्यारी कर रही हूँ। सुनो, अब्बा जान से मैंने कहा था। वे तो खूब खुश हैं—कहते थे कि धीरेन्द्र से अच्छा कोई लड़का नहीं।

धीरेन्द्र ने हँस कर कहा—और यह नहीं कहते थे कि ज़ोहरा से बढ़कर धीरेन्द्र के लिये कोई लड़की नहीं।

ज़ोहरा—अब हँसी तो करो नहीं। यह बताओ इस इंत-ज़ारी का खात्मा कब होगा ?

धीरेन्द्र—तुम जानो।

ज़ोहरा—और तो सब ठीक है। एक बात है गो बहुत छोटी। तुमको मुसलमान बनना पड़ेगा।

धीरेन्द्र—नहीं, यह नहीं होगा,

ज़ोहरा—क्या तुम मुसलमानों से घृणा करते हो ?

धीरेन्द्र—नहीं, मैं मनुष्य मात्र को प्यार करता हूँ। मेरा धर्म घृणा नहीं सिखाता।

ज़ोहरा—उनका छुआ खाने को तय्यार नहीं हो ?

धीरेन्द्र—रोज तुम्हारा बनाया हुआ खाता हूँ।

जोहरा—तुम मुझे प्यार करते हो ?

धीरेन्द्र—हाँ, इसमें सन्देह नहीं।

जोहरा—तो क्या मेरे लिये तुम इतना भी नहीं कर सकते ?

धीरेन्द्र—तुम भी मुझे प्यार करती हो ?

जोहरा—क्या यह आज बतलाने की बात है ?

धीरेन्द्र—तुम मेरे लिये हिन्दू हो जावो।

जोहरा—धीरेन्द्र मैं तुमसे अधिक किसी को नहीं मानती पर मैं स्त्री हूँ तुम पुरुष, तुम मुझसे अधिक वीर और बुद्धिमान हो, जो काम मैं नहीं कर सकती उसे तुम सहज ही में कर सकते हो, क्या तुम मेरे लिये इतना भी नहीं कर सकते ?

धीरेन्द्र—जोहरा यह बात इतनी छोटी नहीं है जितनी तुम समझती हो। धर्म का बदलना खिलवाड़ नहीं है।

जोहरा—प्रेम भी तो खिलवाड़ नहीं है। तुम प्रेमी बनते हो और प्रेम के लिये तनिक भी क़ुर्बानी करने के लिये तैय्यार नहीं हो।

धीरेन्द्र—मैं प्रेम के लिये भारी से भारी क़ुर्बानी करने के लिये तैय्यार हूँ।

जोहरा—तो तुम मुसलमान हो जाओ,

धीरेन्द्र—इससे तुम्हें आनन्द होगा ? तुम यही चाहती हो ?

ज़ोहरा—यदि तुम मुझे तनिक भी प्यार करते हो तो मेरी बात मान जावो, मैं यही चाहती हूँ।

धीरेन्द्र—ज़ोहरा, फिर से सोच लो प्रेम के बीच धर्म का झगड़ा न ले आवो। हम तुम अपने अपने स्थान पर रह कर भी एक दूसरे को प्यार कर सकते हैं। तुम मेरी हस्ती क्यों मिटाना चाहती हो ?

ज़ोहरा—मैं अपनी और तुम्हारी दोनों की हस्ती मिटा कर एक नई हस्ती बनाना चाहती हूँ।

धीरेन्द्र—अच्छी बात है। यदि तुम्हें इसी में आनन्द है तो दिन ठीक कर रखना मैं आऊँगा।

ज़ोहरा—मैं अभी जाकर अब्बा से कहती हूँ।

४

धीरेन्द्र को मुसलमान धर्म की दीक्षा लिये करीब छः मास हो गये। पर उसका कुछ पता नहीं। वह मसजिद से बाहर निकलते ही न मालूम किधर चल पड़ा। बैरिस्टर रामसिंह और ज़हूर अहमद ने उसकी बहुत खोज कराई पर कुछ पता न चला। ज़ोहरा का विचित्र हाल था। वह क़रीब करीब पागल सी हो गई थी। वह सोते सोते चौंक उठती थी। वह एक रोज़ शाम को अपने बाग़ में टहल रही थी। उसका चित्त बहुत उदास था। इतने में उसने देखा कि धीरे धीरे धीरेन्द्र आ रहा है। वह बिल्कुल

सूख कर काँटा हो गया है पर चेहरे से दृढ़ता टपकी पड़ती है। ज़ोहरा उसको देखते ही चौंक पड़ी और दौड़ कर उससे लिपट गई। 'ओफ़ तुम इतने निष्ठुर हो।' उसकी आँखों में आँसू भर आये।

धीरेन्द्र ने उसको सँभालते हुये कहा—'ज़ोहरा, मैं बराबर तुम्हारे पास था। तुमने मुझे देखा नहीं।'

ज़ोहरा—तुम कहाँ चले गये थे और फिर जाना ही था तो अकेले क्यों गये ?

धीरेन्द्र—ज़ोहरा, मैं बराबर तुम्हें पाने का प्रयत्न कर रहा था। मैं चाहता था कि मैं तुम्हें इस रूप में पाऊँ कि फिर यह कपटी संसार कभी तुम्हें मुझसे छीन न सके और परमेश्वर को धन्यवाद है कि मैं तुमको पा गया, मैं कहीं भी रहूँ बराबर तुम्हें देखता रहता हूँ। एक पल के लिये भी तुम मेरी आँखों से ओझल नहीं होती। समस्त संसार में केवल तुम्हीं दिखाई पड़ती हो। ऐसा मालूम पड़ता है कि तुमको पाकर मैं इस समस्त विश्व को पा गया हूँ। मेरा हृदय आनन्द से परिपूर्ण है।

ज़ोहरा—तुम्हारी कल्पना बड़ी ऊँची है। मैं वहाँ तक नहीं पहुँच पा रही हूँ। मैं तो तुमको जानती हूँ। तुम मेरे हो।

धीरेन्द्र—मैं समस्त विश्व का हूँ और समस्त विश्व मेरा है।

ज़ोहरा—नहीं धीरेन्द्र तुम केवल मेरे हो।

धीरेन्द्र—क्यों ज़ोहरा। तुम मेरे इस विश्व व्यापक प्रेम को केवल अपने इस नन्हे से शरीर में भर रखना चाहती हो। ज़ोहरा यह शरीर आज है कल नष्ट हो जायगा। इस का क्या भरोसा। तुम अपने हृदय को विशाल करो। तुम देखोगी कि उसमें समस्त विश्व के लिये स्थान है। उसमें असंख्य धीरेन्द्र हैं। जितना ही तुम ऊपर उठोगी उतने ही तुम्हें धीरेन्द्र मिलेंगे। क्यों ज़ोहरा तुम मुझे प्यार करती हो या मेरे शरीर को। यदि तुम स्थूल शरीर को प्यार करती हो तो लो यह तुम्हारे सामने खड़ा है। पर यह केवल जड़ पदार्थ है और कुछ भी नहीं।

ज़ोहरा—मैं तुम्हारी बातें नहीं समझ पा रही हूँ। मैं तुम्हारा प्रेम चाहती हूँ।

धीरेन्द्र—समझो या न समझो पर कहती ठीक हो। तुम मेरा प्रेम चाहती हो। तुम मेरी बात भी समझ जावोगी पर उसके लिये त्याग की आवश्यकता है। जब तक मैंने त्याग नहीं किया था मैं भी नहीं समझ पाता था। मैंने सब से भारी चीज़ जो मेरे पास थी उसको त्याग कर तुम्हारा प्रेम पाया है। तुम भी जो तुम्हारे पास सब से प्यारी चीज़ हो उसको त्याग

दो तो मैं तुमको मिल जाऊँगा, तुम सब से अधिक मेरे इस शरीर को चाहती हो इस मोह को त्याग दो तब मैं तुमको मिल जाऊँगा।

ज़ोहरा—तो तुम शादी न करोगे ?

धीरेन्द्र—मुद्दत हुई हमारी तुम्हारी शादी हो चुकी। हमारा तुम्हारा विच्छेद कभी नहीं हो सकता। जब हमारा तुम्हारा हृदय एक है तब इस शारीरिक बन्धन से क्या ? ज़ोहरा, देखो संसार पुकार रहा है। मैं तुम्हारी आँखों में समस्त संसार की छाया देख रहा हूँ। तुम्हारे आँसुओं में मैं समस्त विश्व को रोता देखता हूँ, तुम्हारे करुण क्रन्दन में मैं विश्व का हाहाकार सुनता हूँ। तुम्हारे गान में विश्व का संगीत सुनाई पड़ता है और तुम्हारे हास में विश्व का आनन्द नाच रहा है। तुम मेरे में देखो। बस यही तो प्रेम है। तुम अधिक क्या चाहती हो ?

ज़ोहरा—यदि तुमको शादी ही नहीं करनी थी तो तुमने अपने धर्म को क्यों छोड़ा ?

धीरेन्द्र—उस झूठे धर्म को छोड़ कर ही तो मैं इस सच्चे धर्म को जान सका हूँ। मैंने धर्म को नहीं छोड़ा। ज़ोहरा,

'प्रेम ही तो धर्म है'

धोखा

धोखा

सरला—आप क्यों व्यर्थ मेरे लिये चिन्तित होते हैं ? मुझे कोई रोग नहीं है ।

रमेश—तुम्हारा स्वास्थ्य दिन पर दिन बिगड़ता जाता है । रोग पुराना होने पर जड़ पकड़ लेता है । मैंने डाक्टर को दिखाने का निश्चय किया है । वे आठ बजे आयेंगे ।

सरला—मैंने आप से कई बार कहा है फिर भी कहती हूँ कि न तो डाक्टर मेरे रोग को ही पहचान सकता है और न उसके पास इसकी कोई औषधि ही है ।

रमेश—अगर तुम को कोई रोग नहीं है तो दिन ब दिन सूखती क्यों जाती हो ? शाम को हरारत क्यों हो आती है ?

सरला—अगर आप जानने के लिये व्यग्र हैं तो मैं बताती हूँ । मेरे हृदय में रोग है । चिन्ता के कारण मैं घुली जा रही हूं और उसको दूर करने की सामर्थ्य आप में है डाक्टर में नहीं ।

रमेश—सरला तुम क्यों व्यर्थ में सन्देह करती हो ? इसका फल क्या होगा ?

सरला—भविष्य में क्या होगा सो तो नहीं जानती पर प्रत्यक्ष जो कुछ हो रहा है वह देख ही रही हूं।

रमेश—क्या तुम्हारा मेरे ऊपर विश्वास नहीं है।

सरला—आप भी मनुष्य हैं, एक मनुष्य के ऊपर जितना विश्वास किया जा सकता है उतना विश्वास आप के ऊपर मेरा है।

रमेश—क्या शान्ता के साथ पत्र व्यवहार बन्द कर देने पर भी तुम्हें शान्ति मिल सकती है अन्यथा नहीं ?

सरला—हर प्रकार का सम्बन्ध तोड़ देने पर।

रमेश—तुम मुझे अपना गुलाम बनाना चाहती हो। क्या इसी को प्रेम कहते हैं ?

सरला—आप मुझे अपनी दासी समझते हैं—प्रेम का अर्थ यह नहीं है।

रमेश—मैंने तुम्हें ऐसा कभी नहीं समझा बराबर तुम्हारा ध्यान रखता हूँ।

सरला—क्षमा कीजियेगा। स्त्री केवल रोटी दाल और कुर्ती धोती ही नहीं चाहती। वह अपना हृदय देती है और बदले में हृदय चाहती है। यह उसका अधिकार है।

रमेश—जिसमें मुझे सुख हो क्या उसको करना तुम्हारा धर्म नहीं है ?

सरला—सच्चे मार्ग पर चलना ही हम लोगों का धर्म है।

रमेश—तो केवल शान्ता से सम्बन्ध रखने के ही कारण मैं धर्म से गिर गया ? शान्ता एक सुशिक्षिता........

सरला—शान्ता मेरी बाल्य सखी है। मैं उसके विषय में आप से अधिक जानती हूँ। वह परम सुन्दरी है, खूब मीठी मीठी बातें करना जानती है। मेरी तरह काली नहीं है।

रमेश—तुम व्यर्थ में सब बातें अपने ऊपर ले जाती हो। यहाँ तो काली गोरी का सवाल ही नहीं है। खैर—देखो डाक्टर साहब आ रहे हैं, तैय्यार हो जावो। मैं नीचे जाता हूँ।

डाक्टर साहब ने देखा। कमज़ोरी बताई। दवा दिये चले गये। दिन भर बराबर सरला और रमेश शान्ता के विषय में बातें करते रहे। पर रमेश कुछ वादा न कर सके। उन्होंने साफ़ साफ़ कह दिया कि जब तक मेरे हृदय में उसके प्रति कलुषित विचार नहीं है, तब तक मैं कदापि सम्बन्ध नहीं त्याग सकता। सरला बड़ी दुःखित हुई। वह बड़ी आशा लगा कर आई थी। शाम की गाड़ी से मकान—ग्राम में जहाँ पर कि रमेश का घर था चली गई। रमेश की माँ वहाँ पर

अकेली थी। उसको डाक्टर को दिखाने के लिये रमेश ले आये थे।

रमेश बराबर इसी समस्या को हल करने में लगा रहा। भाँति भाँति के विचार उसके हृदय-सिन्धु को मथने लगे। कभी वह सोचता मैं सरला के साथ अन्याय कर रहा हूँ। यदि उसको इससे दुःख होता है तो मुझे यह सम्बन्ध रखना उचित नहीं, अवश्य मेरा हृदय पवित्र है। शान्ता के प्रति मेरे भाव बुरे नहीं हैं। पर थोड़ी देर में प्रतिद्वन्दी विचार आकर इसको हटा देते। अन्त में उसने निश्चय किया कि जब तक मेरे हृदय में बल है अपने ऊपर विश्वास है और यह सामर्थ है कि मैं इस प्रेम को पवित्र रक्खूँ तब तक इस सम्बन्ध को न तोड़ूँगा। हो सकता है शान्ता का प्रेम इतना पवित्र न हो पर मुझे विश्वास है कि समय पाकर यदि कहीं कोई कालिमा है भी तो वह दूर हो जायगी, उसने सरला को पत्र लिखा :—

मेरी प्यारी सरला,

तुम मुझसे रूठ कर चली गई। हृदय में भारी धक्का लगा। मैंने उस समस्या पर फिर विचार किया और मेरी हार्दिक इच्छा थी कि फैसला तुम्हारे पक्ष में हो पर दुःख के साथ कहना पड़ता है कि हृदय और विवेक दोनों ने मिल कर पूर्व निश्चित फैसले का ही अनुमोदन किया। मेरे और

तुम्हारे बीच में शान्ता का सम्बन्ध एक अजीब काँटा है इसकी घटनाओं से तुम पूर्ण रूप से परिचित हो। मैं केवल उनकी ओर संकेत करता हुआ वर्तमान परिस्थिति को दर्शाना चाहता हूं।

शान्ता की प्रशंसा सुन कर उनके प्रति मेरा अनुराग हुआ। पर मैंने इसको तूल नही दिया। मुझे उसकी प्राप्ति की विशेष उत्कन्ठा कभी नहीं हुई। हाँ यह इच्छा सदा रहती थी कि उनको भी मेरा ज्ञान होऔर मेरे प्रति अनुराग और सहानुभूति का भाव हो। वह मेरी नहीं हो सकती थी यह मुझे मालूम था। प्रेम की यह पराकाष्टा कभी न थी कि मैं उसको प्राप्त करने के लिये ज़मीन और आसमान के कुलाबे मिलाता। विवाह का जब समय आया तो मैंने एक मिनट के लिये भी शान्ता का ध्यान नहीं किया। और नामों की सूची में से विचार पूर्वक दृढ़ता के साथ तुम्हारा नाम छाँटा। पर मेरा अनुराग शान्ता के प्रति अक्षुण बना रहा। मुझे अपनी स्वनि-र्वाचित अर्द्धाङ्गिनी के प्रति असन्तोष का भाव न था। अपने सच्चे हृदय से कहता हूं कि मुझे असन्तोष है भी नहीं। यदि मैं काश्मीर के प्राकृतिक दृश्यों का बड़ा प्रशंसक हूँ तो इसके कदापि यह अर्थ नहीं कि मैं अपने गाँव के दृश्यों से असन्तुष्ट हूँ। अपनी अनेक अवस्थाओं और आवश्यकताओं का विचार करके मैं

अपना निवास स्थान प्रयाग के पास ही स्थिर करूँगा, काश्मीरी दृश्यों की प्रशंसा में पड़ कर अपने घर को बरबाद न करूँगा साथ ही काश्मीर के दृश्यों को तुच्छ बतलाना व्यर्थ का वितण्डावाद है।

अपने इस हृदय पर मैं रोता और खीझता हूँ जो मुझे उन लोगों का विरोधी नहीं बना सकता जिन्हें मैंने कभी प्रेम की दृष्टि से देखा है, मैंने अपने सहयोगी कवियों, लेखकों, वक्ताओं और प्रेमियों किसी से भी ईर्षा नहीं की, मेरा तो विश्वास है कि अखिल संसार में मेरा कोई स्थान है जो केवल मेरा है किसी अन्य का हो नहीं सकता। उसी तरह का दूसरा वह अपने लिये बना सकता है। तुम्हारे हृदय में मेरा एक स्थान है जो खास तौर से मेरा है, वहाँ पर माँ के प्रति श्रद्धा है सखी के प्रति सखी भाव है, किसी अन्य पुरुष के प्रति मेरा जैसा प्रेम भाव हो सकता है—किन्तु मेरा जैसा—मेरा तो नहीं। ठीक इसी भाँति शान्ता के हृदय में भी मेरा स्थान है जो केवल मेरा है। शान्ता के पति, भाई, मित्र, यार, दोस्त उस स्थान विशेष को अपना नहीं बना सकते।

मनुष्य का हृदय इतना बड़ा है जिसकी कल्पना नहीं की जा सकती। उसमें सारी सृष्टि के लिये स्थान है फिर भी बहुत कुछ बाकी बच रहता है। किसी व्यक्ति का यह दावा करना कि

अमुक हृदय पर मेरा पूरा एकाकी अधिकार है उसकी विडम्बना मात्र है। उसका केवल एक विशेष स्थान है जिसके रहते हुये लाखों नये स्थान बनाये जा सकते हैं। जिस समय मैं शान्ता को प्यार करता हूँ उसका केवल यह अर्थ समझता हूं कि मुझको उससे और उसको मुझसे सहानुभूति है। इस सहानुभूति को अच्छी तरह समझ लो। उसके शरीर पर मेरा केवल इतना अधिकार है कि कभी प्यास लगे तो उसके हाथ का पानी पी लूं; चोट लगे और वह मौजूद हो तो घाव में पट्टी बाँध दे; बहुत गर्मी पड़ती हो उसे कष्ट न हो तो पंखा हाँक दें, उसके रूप पर मेरा इतना अधिकार है कि यदि प्रशंसा के भाव से देखना चाहूँ तो भर आँख देख लूं, विधाता की कारीगरी की सराहना कर लूं। यदि नसों में विषय की बिजली दौड़े, आँखों में उन्माद का सुरूर आये तो आँखों को गरम सलाई से फोड़ दूँ। उसके पति भाई शंकर का उस पर एक विशेष अधिकार है वह उन्हीं का है। उससे मेरा रत्ती भर सम्बन्ध नहीं। उसके सम्बन्धियों का भी एक विशेष प्रकार का अधिकार है; वे हास परिहास कर सकते हैं मुझसे उससे कोई मतलब नहीं है।

तुम मुझे उससे तटस्थ बना सकती हो पर मेरे हृदय को उसका विरोधी नहीं बना सकती। तुम मुझे अपने रंग में रंग

कर मेरी सत्ता क्यों मिटाती हो। क्या बिना मेरी सत्ता मिटाये तुम मेरी हो कर नहीं रह सकती ? तुम मेरी उदारता को निर्बलता का रूप देती हो, मैं तुम्हारी दृढ़ता को संकीर्ण हृदयता निरङ्कुशता और अदूर दर्शिता कह सकता हूँ। क्या हमारे तुम्हारे प्रेम का संयुक्त अभिप्राय शान्ता का विरोध करना है ? क्या तुम्हें मालूम है उसने तुम्हारा विरोध कभी नहीं किया ?

तुम्हारा ही

रमेश

२

शंकर और रमेश में मजे का परिचय था। रमेश के ही प्रयत्न से शान्ता की शादी शंकर के साथ हुई थी। शंकर का शान्ता के ऊपर अगाध स्नेह था और विश्वास था। शान्ता में लुभाने की एक अजीब शक्ति थी। वह व्यवहार में बड़ी कुशल थी। मानव हृदय का उसने ख़ूब अध्ययन किया था। शंकर को ख़ूब ख़ुश रखती, ख़ूब प्रेम दर्शाती। शंकर उर्दू जानते थे। हिन्दी से अनभिज्ञ थे। शान्ता के पत्र कभी न खोलते, उसके पास बन्द लिफाफ़ा पहुँच जाता। रमेश बराबर हफ़्तेवार शान्ता के पास पत्र भेजते। शान्ता उत्तर देती, दोनों बढ़ते गये, शान्ता ने लिखा, 'आप प्रेम का खेल क्यों करते हैं। यदि माल नहीं लेना है तो व्यर्थ में भाव पूछ कर दूकानदार को तङ्ग क्यों

करते हैं।' उत्तर आया—'विनोद के लिये, अनुभव के लिये, और भाव जान कर अपनी खरीदने की शक्ति से मुक़ाबला करने के लिये।' दूसरा पत्र आया—'माल की दर घटाई भी जा सकती है पर पहले दूकानदार को यह तो मालूम हो कि ग्राहक को सौदा पसन्द आया कि नहीं।' उत्तर मिला—'माल पसन्द होने पर ही ग्राहक उसके मोल भाव के विषय में अधिक पूछ ताछ करता है।'

रमेश एक ज़हरीले साँप से खेल रहा है। अज्ञान मनुष्य शीघ्र चेत सकता है। केवल सच्ची बात मालूम होते ही वह सँभल जाता है। पर जो जानते हुये भी अज्ञान है उसके बचने की कोई आशा नहीं।

३

मेरी प्यारी सरले,

तुम्हारे पत्र का उत्तर मैंने इस लिये अभी तक नहीं दिया कि उसमें शान्ता की विशेष चर्चा थी जिस पर मैं अपनी स्वच्छन्द स्पष्ट और विवेक पूर्ण राय कायम न कर सका था।

तुमने बड़े मार्के की बात लिखी है कि पराई स्त्री के ऊपर इतना बाद विवाद शोभा नहीं देता। यह वाक्य अत्यन्त सीधा सादा पर तत्वपूर्ण है। पर प्रिये जिस अर्थ में तुमने इसे लिखा है उस अर्थ में यह लागू नहीं है। शान्ता का जन्म तुम्हारे

ग्राम में हुआ है। भाई महेश की बहिन है। महेश मेरे परम मित्र हैं। शान्ता पढ़ी लिखी है। स्त्री और स्त्री-शिक्षा की ओर मेरी स्वाभाविक प्रवृत्ति है।

शान्ता तुम्हारी सखी है और ग्राम के सम्बन्ध में तुम्हारी बहिन है। इन तमाम परिस्थितियों के होते हुये उनसे सम्बन्ध होना स्वाभाविक है। कोई विशेष कौतूहल और आश्चर्य्य की बात नहीं।

सम्बन्ध का अनौचित्य दो कारणों पर कहा जा सकता है, (१) उसका चरित्र (२) मेरे हृदय की कलुषता।

उसके सम्बन्ध में चरित्र-हीनता केवल इस अर्थ में कही जा सकती है कि जीवन के किसी काल में उससे चन्द भूलें हुई हैं जिनके लिये यदि वे सत्य हों तो—उसे अवश्य पश्चाताप होगा। तुम नहीं कह सकतीं कि अब भी वह भूलें करती हैं। क्या उन आकस्मिक भूलों के लिये वह तुम्हारी और हमारी घृणा का पात्र हो गई? हृदय की कठोरता सदाचार प्रियता की अनिवार्य्य शर्त नहीं है सदाचार प्रियता और सहृदयता में विरोधात्मक सम्बन्ध आवश्यक नहीं है। भावुकता में आकर थोड़े मानसिक चोंचले उसने भले ही किये हों। तुम्हारे पिछले पत्र के आधार पर मैं यह भी मानने को तैयार हूँ कि मर्यादा की सूक्ष्म रेखा भी किसी समय पर पार कर गई

हो, पर उसने आचार के महिमा को रौदां नहीं था। वह अपने हृदय को निर्मल समझती थी। यदि बजाज की दूकान पर कोई ग्राहक किसी थान पर देखते २ कहीं धब्बा लगा दे, या जेठ की दुपहरी में बेचारा बजाज नींद आने पर किसी थान पर तकिया लगा कर सो जाय तो क्या वह थान कोरा न कहलायेगा ?

दूसरी बात विशेष विचारणीय है। यदि वास्तव में हृदय में कलुषता हो तो एक क़दम भी आगे बढ़ना ठीक नहीं। पर सरला, यदि विशुद्ध भावनायें स्वाभाविक और सम्भव हों तो दुर्भावनाओं को विचार में स्थान ही क्यों दिया जाय। कुविचारों का स्थान अविचारों को नहीं सुविचारों को देना चाहिये।

सरला, मैं तुमसे निवेदन करता हूँ वह तुम्हारी बहिन है, सखी है, एक सुशिक्षिता और सुशीला बालिका है। उससे घृणा मत करो उसके अवगुणों पर (यदि हों) प्रकाश मत डालो। उसने किसी का कुछ बिगाड़ा नहीं। यदि अज्ञान वश कोई स्वयं अपने पाँव में कुल्हाड़ी मारे तो वह बिचारी क्या करे। यदि ब्रह्मा ने उसे सौन्दर्य्य प्रदान किया है तो इसमें उसका क्या अपराध ? यदि दीपक पर मूर्ख पतङ्ग गिर कर जले तो उसका क्या कसूर ?

सरला, नारी जाति में लज्जा और संकोच की ईश्वर प्रदत्त मात्रा इतनी अधिक होती है कि यदि धृष्ट निर्बल हृदय पुरुष आगे न बढ़ें तो चञ्चलाति चञ्चल कामिनियों का भी पतन न हो। सब के गुणों का गान करो अवगुण पर पर्दा डालो।

अगले इतवार को मैं आऊँगा। उत्तर शीघ्र दिया करो।

तुम्हारा ही
रमेश

४

रमेश—घर में तो और सब कुशल है।

शंकर—सब कुशल है।

रमेश—आप ने वहाँ के डाक्टरों को नहीं दिखाया। ज्वर पुराना मालूम पड़ता है।

शंकर—दिखाया था। उन लोगों ने 'वायुपरिवर्तन' के लिये कहा। यहाँ पर कौन सा डाक्टर अच्छा है।

रमेश—अब आप यहाँ की बातों के लिये चिन्ता न करें। मैं सब ठीक कर लूँगा।

शान्ता का वायु परिवर्तन के साथ साथ हृदय परिवर्तन भी हो गया। सवेरे डाक्टर आये। देखा बहुत अन्वेषण करने पर पुराने ज्वर का सन्देह हुआ। नदी तट पर एक रमणीक

स्थान पर कुछ रोज़ के लिये रहने के लिये व्यवस्था हुई। गंगा जी के किनारे एक मकान लिया गया। सामने बागीचा था। उसके आगे गंगा जी। रमेश भी वहीं पर रहने लगा। शंकर ने सब भार उन्हीं के ऊपर छोड़ दिया था। पर भँवर फूलों के बोझ से नहीं दबता। शान्ता भी अब अच्छी हो गई थी। ज्वर को छूटे तो बहुत रोज़ हो चुका था। रमेश बराबर शान्ता के पास रहता। घण्टों बातें होतीं। कभी कभी अपने भूत जीवन की आलोचनायें होतीं। किस प्रकार एक दूसरे का नाम, परिचय, जान पहचान, दर्शन, और प्रेम हुआ। अक्सर बात के अन्त में शान्ता मुसकुरा कर दबी नज़र से रमेश की ओर देख देती, रमेश नीचे को सर कर लेते।

एक रोज़ शान्ता और रमेश बातें कर रहे थे। शान्ता ने कुढ़ कर कहा:—प्रवृत्तियों को दबाना अपने आत्मा का हनन करना है। उससे हानि है लाभ नहीं।

रमेश—प्रवृत्तियों का दमन करने में ही आनन्द है।

शान्ता—बिल्कुल झूठ है।

रमेश—प्रमाण।

शान्ता—यह तो आप भी मानते हैं कि ज्ञान से आनन्द की वृद्धि होती है।

रमेश—अवश्य।

शान्ता—और ज्ञान की वृद्धि अनुभव से होती है। आप पुस्तकों से ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। आदमियों से जान सकते हैं पर वह ज्ञान असली ज्ञान न होगा। असली ज्ञान वह ज्ञान होगा जिसे कि आप अपने अनुभव से मालूम करें। और अनुभव के लिये प्रवृत्तियों का जाग्रत रहना परमावश्यक है। आप प्रवृत्तियों को दमन कर अनुभव का रास्ता ही रोक देते हैं और अनुभव का रास्ता रुक जाने पर ज्ञान का भण्डार ख़ाली रह जाता है। ज्ञान न रहने से आनन्द कभी सम्भव नहीं है इस कारण प्रवृत्तियों को पूरी करने में ही आनन्द है।

रमेश—तुमने दर्शन का अध्ययन कहाँ किया। मैं तो समझता था कि तुम केवल प्रेम-शास्त्र की ही आचार्य्या हो।

शान्ता—व्यर्थ में विषयान्तर न करिये बतलाइये आप मेरी बात के क़ायल हुये कि नहीं ?

रमेश—मैं तो तुम्हीं पर क़ायल हूँ तब भला तुम्हारी बात का क़ायल कैसे न हूँगा। पर शान्ता यह बात तुमको भी माननी पड़ेगी कि कुछ बातें ऐसी हैं—कुछ प्रवृत्तियाँ ऐसी हैं कि जिनका फल दुःख है, ग्लानि है। जिसकी एक बार परीक्षा कर ली गई है बार बार उसकी परीक्षा करना उचित नहीं।

शान्ता—आप फिर ग़लती पर हैं। दुःख सुख क्या है आप ने कभी इस पर विचार किया है। दुःख सुख मनुष्य की मान-

सिक स्थिति पर निर्भर हैं और मानसिक शक्ति का आधार विचार शक्ति पर है। यह आपके विचारने की बात है। आप झूठ बोलते हैं आप को दुख होता है क्योंकि आप अभी तक ऐसा ही समझते आये हैं। आप इच्छा को दबाते हैं। कहते हैं इसी में सुख है। मैं अपनी इच्छा की पूर्ति पर सुखी होती हूँ। न दुःख है न सुख; न पाप है न पुण्य; जिसे आप जिस प्रकार समझ लें वह वैसा ही है। ग्लानि, यह तो आत्म निर्बलता है। दृढ़ता के साथ आगे बढ़िये कहीं कुछ नहीं। जब तक हृदय में कमजोरी रहती है तभी तक ऐसे दुर्बल विचार आते हैं।

रमेश—तुमने पुण्य पाप, स्वर्ग और नर्क की हस्ती ही मिटा दी।

शान्ता—मैं नहीं जानती कि इस संसार के परे भी कुछ है और न जानना ही चाहती हूँ। सामने दरिया बह रहा है। प्यास लगी है। पानी न पीकर अँधेरे में भटकना मेरी समझ में बुद्धिमानी नहीं है। तर्क भी इसकी ताईद नहीं करता। प्यास लगी है, स्वच्छ जल बह रहा है, पीजिये, प्यास बुझाइये।

शाम हो गई। रमेश को डाक्टर के यहाँ जाना था। उठ बैठा। शान्ता ने मुसकुरा कर रमेश की ओर देखा और पूछा—कहिये अब तो आपकी शंकायें दूर हो गईं ?

रमेश का बदन काँप उठा। उत्तर दियाः—ऐसी शिक्षिका पाने पर भी शंकायें शेष रह सकती हैं।

रात्रि को बराबर रमेश उन्हीं बातों पर विचार करता रहा। शिकारी चला था शिकार करने, विनोद करने पर आप ही शिकार हो गया। प्रातःकाल सो कर उठा तो उसने अपने में एक विशेष परिवर्तन पाया।

५

शाम का समय था। आकाश में बादल छाये हुये थे। रह रह कर बूँदा बूँदी हो जाती थी। मद-माती वायु बह रही थी। शङ्कर बाज़ार गया था। बड़ा ही सुहावना समय था। बड़ा ही लुभावना दृश्य था। ऊपर झरोखे के पास रमेश और शान्ता बैठे हुये थे। शान्ता ने रमेश से कहा—देखो रमेश ये वृक्ष कितने सुन्दर लगते हैं, कितने हरे भरे हैं।

रमेश—केवल वृक्ष ही क्यों चारों ओर हरियाली ही हरियाली दिखाई पड़ती है। वह देखो वृक्षों पर पर फैलाये हुये पक्षियों का जोड़ा कितना सुन्दर लगता है। विचारे सर्दी से काँप रहे हैं पर कितने खुश हैं।

शान्ता—संसार में सभी कहीं दो हैं। हम लोग भी तो दो ही प्राणी बैठे हुये हैं तब उन विचारों के ऊपर ईर्षा क्यों करते हो। शान्ता ने रमेश की ओर लालसा और चाह भरी दृष्टि

से देखा। रमेश के शरीर में गुदगुदी उठी। सर नीचा नहीं हुआ। शान्ता की ओर देखा। आँखों ने प्रश्न किया। शान्ता ने आंखें मूंद ली।

रमेश—शान्ता, तुम पतली साड़ी पहने हो। सर्दी लग जायगी। चेस्टर पहन आवो, जावो।

शान्ता—तुम पागल हो।

रमेश—अनुताप से हृदय जलेगा।

शान्ता—कमज़ोरी है।

रमेश उठ खड़ा हुआ हृदय जोर से धड़क रहा था। पर आँखों में उन्माद था उसने चाहा कि शान्ता का हाथ पकड़ ले। पर ठीक इसी समय शङ्कर की आवाज नीचे सुनाई पड़ी। गाड़ी में ब्रेक लगा। रमेश का हृदय धक से हो गया। वह कुर्सी पर बैठ गया। विवेक कह उठा—'विश्वासघाती'। शङ्कर ऊपर आया। रमेश की दशा देख कर घबड़ा उठा। पूछा तबियत कैसी, है।

'मकान से पत्र आया है—सरला की तबीयत खराब है।" शान्ता ने कहा। रमेश शाम की गाड़ी से घर चल पड़ा। शान्ता ने अतृप्त भाव से उसकी ओर देखते हुये कहा—'शीघ्र आना'। रमेश ने उपेक्षा की दृष्टि से दूसरी ओर देखते हुये कहा—'धोखा बार बार नहीं होता।'

ईर्षा

ईर्षा

बाबू श्याम किशोर कचेहरी से आकर बैठे ही थे कि नौकर ने डाक में आई हुई चिट्ठियाँ ले आकर उनके सामने टेबुल पर रख दीं। उन्होंने उड़ती नज़र से चिट्ठियों की ओर देखा। एक लिफ़ाफ़े पर उनकी दृष्टि रुक गई। अक्षर की बनावट से ही हाथों की कोमलता का पता चल रहा था। पत्र में केवल चार लाइनें थीं।

कानपुर
१७-४-२१

मान्यवर मास्टर साहब,

मैं तारीख़ २० की शाम की गाड़ी से प्रयाग आ रही हूँ। साथ में मेरे पति प्रोफ़ेसर साहब भी हैं। उनको ज्वर आता है। मेरे लिये एक मकान किराये पर ले रखने की कृपा करियेगा। यदि आप स्टेशन पर मिलें तो बड़ी दया होगी, शेष कुशल।

आप की आज्ञा कारिणी
किरण

पत्र पढ़ते ही श्याम किशोर को अपना गत जीवन स्मरण आया। श्याम किशोर ला पढ़ते थे और किरण दसवें दरजे में थी। ये उसको पढ़ाया करते थे। किरण का स्वभाव बड़ा हठी था। वह निर्भीक और स्वतन्त्र प्रकृति की बालिका थी और थी धुन की पक्की, उसको अपनी बात पर अड़ने का स्वभाव था और मनमानी करने की आदत। श्याम किशोर से वह खूब बहस करती थी। श्याम किशोर को भी बहस करने में आनन्द आता था पर न मालूम क्या सोच कर रुक जाते। अर्थमेटिक के सवाल हल करने लगते। किरण बैठी एक सवाल हल कर रही थी। अगले सप्ताह में परीक्षा ख़तम हो जायगी पता नहीं यह सुन्दर पर दृढ़ चेहरा फिर से देखने को मिलेगा या नहीं, सामने स्वच्छ जल पाकर पानी न पीना और न रहने पर पछताना कहाँ की बुद्धिमानी है। श्याम किशोर ने दबी दृष्टि से किरण को देखा, आँखे नीचे गिर गईं। दृष्टि काँपी पर किशोर ने अपनी आँखें उसके चेहरे पर गड़ा दीं। अवसर भाग्य विधाता है। एकाएक किरण ने सर उठाया, वह किशोर को अपनी ओर देखते हुए देख कर हंस पड़ी। विनोद में पूछा; 'मास्टर साहब क्या देख रहे हैं' किशोर कुछ जवाब न दे सके। चोरी का अभ्यास न था। चेहरे पर पसीने की बूँदें झलकने लगीं। उठ कर हास्टल की ओर चल पड़े, किरण पुकारती ही

रह गई, चौथे रोज उन्हें किरण का एक पत्र मिला जिसमें उसने उनके पढ़ाने न आने पर खेद प्रकट किया था और शाम को अवश्य आने के लिये लिखा था, पर किशोर न गये। उनका हृदय बड़ा खिन्न था। धनी का अमूल्य रत्न खो गया था। उन्होंने लिखा कि तुम्हारा कोर्स तैय्यार है। मुझे क्षमा करो, मेरा हृदय पवित्र नहीं, इसके चौथे रोज़ बाद फिर किरण का पत्र मिला, उसने लिखा था कि मैं जानती हूँ आप का हृदय पवित्र नहीं पर संसार में पवित्रता का दावा कौन कर सकता है। शाम को ५॥ बजे पार्क में अवश्य मिलियेगा। श्याम किशोर का हृदय काँप उठा। वे किरण के स्वभाव को जानते थे, उसी रोज़ शाम की गाड़ी से मकान के लिये रवाना हो गये।

आज चार वर्ष के बाद फिर से किरण का पत्र पाकर किशोर चौंक उठे। उनकी आँखों के आगे किरण का तम-तमाया हुआ चेहरा नाचने लगा। अधिक समय न था, रेलवे गाइड उठा कर देखा ८ बजे गाड़ी आती है ६ बजे के क़रीब थे उन्होंने अपनी पत्नी किशोरी को पुकारा और उससे यह कह कर कि मेरे एक मित्र सपत्नीक कानपुर से आते हैं मैं उनको लेने के लिये स्टेशन पर जाता हूँ वे चल पड़े। ठीक समय पर गाड़ी आई। किरण ने किशोर को नमस्ते करते हुये पूछा 'कहिये बँगला ठीक कर लिया है'। उन्होंने सकुचाते हुये कहा

नहीं आज अभी तो पत्र मिला है, मैंने होटेल में ठहरने का प्रबन्ध कर लिया है। कल कोई मकान तलाश कर के ले लिया जायगा। किरण ने किशोर की ओर देखते हुये कहा 'क्यों क्या एक रात को हम लोग आपके यहाँ नहीं ठहर सकते थे ? पत्नी जी ने मना किया होगा। अच्छा कल शहर के बाहर एक बँगला ठीक कर दीजियेगा। हम लोग यहाँ पर दो तीन माह ठहरेंगे। किशोर कुछ न बोले। टाँगा होटेल की ओर चल पड़ा।

२

किरण के पति प्रोफेसर साहब की दशा न सुधरी। किरण दिन रात उनकी सेवा करती, न दिन को दिन समझती, न रात को रात। उसको अपने तन बदन की कुछ भी सुध बुध न थी, पर न मालूम क्यों जब डाक्टर उनको देखने आता वह घबड़ा सी जाती। किरण ने अपना जी छोड़ कर उनकी सेवा की पर एक रोज़ रात को प्रोफेसर साहब ने उसे धोखा देकर सदा के लिये आँखें मूँद लीं। वह चीख़ उठी, किशोर भी अपने को न रोक सके। इसके दो माह बाद किरण किशोर के यहाँ आकर रहने लगी, किशोरी उसको बहुत प्यार करती। वह उसके दुख से दुखी थी। उसने उसके भेष भूषा में कोई परिवर्तन नहीं होने दिया। किशोरी का किरण पर बड़ा विश्वास था।

श्याम किशोर भी उसके मन बहलाने का भरसक प्रयत्न करते। किरण सवेरे चाय तैयार करती दस बजे कचहरी के समय उनके कपड़े ठीक कर रख देती और जब वे ४।। बजे कचहरा से आते उनको नाश्ता करा हारमोनियम ले कर बैठ जाती और गाना गाती। किशोरी को इससे बड़ा आनन्द था, वह बहुत से कामों से छुट्टी पा गई थी, पर भोली भाली बाला यह न जानती थी कि उसके घर में चोर पैठ चुका है। श्याम किशोर को अब कचेहरी में अच्छा न लगता और न बहस ही में आनन्द आता। घर पर मुअक्किलों के आने पर वे झुँझला उठते। वे अक्सर कचहरी से कभी सिर दर्द का कभी जोकाम का बहाना करके जल्दी चले आते। किरण के साथ कभी ताश खेलते कभी शतरञ्ज। इस दुखिया विधि के हाथ सतायी रमणी को सान्त्वना देना वे अपना कर्तव्य समझते थे। पक्षी दाने के लालच में पड़ चुका है। जाल के पास पहुँच गया है केवल फँसने की देर है। कचहरी जाने का समय था, श्याम किशोर कपड़ा पहन रहे थे कि इतने में किरण बगल के कमरे से स्नान कर निकली। उसके बाल पीठ पर बिखरे हुये थे, आँखों में कुछ ललाई छा गई थी, चेहरा निखर उठा था। धुले अधर खिल उठे थे। श्याम किशोर का कोट हाथ ही में रह गया, वे आराम कुर्सी पर बैठ गये, नौकर से गाड़ी खोल देने को कहा।

धीरे से पुकारा 'किरण' वह आकर एक छोटे टेबुल पर बैठ गई। बालों को बयोरते हुये पूछा, 'कहिये आज कचहरी न जाइयेगा'। श्याम किशोर ने कहा, 'नहीं आज तबियत नहीं अच्छी मालूम होती, कोई गाना गाओ, उसने मुसकुराते हुये कहा, 'यह गाने का कौन सा समय है'—उसने बेला उठा लिया और धीरे धीरे बजाने लगी। किशोर सोफ़े पर लेट आँखें बन्द कर सुनने लगे। उनके हृदय ने पूछा 'क्या भूल सुधारी नहीं जा सकती' पर हिम्मत ने जवाब दे दिया। वे अपने सर पर हाथ फेरने लगे। किरण ने पूछा, 'क्यों क्या सर में दर्द है।' श्याम किशोर ने उसकी ओर देखते हुये कहा, 'हाँ।' वह उठी, उनके पास जाकर सिरहाने एक कुर्सी पर बैठ कर सर दबाने लगी। श्याम किशोर ने कहा तनिक तेल ले लो। किरण तेल लेकर उनके सिर में मलने लगी पर कुर्सी पर से तेल लगाने में सुविधा न होती थी। वह सोफ़े पर बैठ गई। एक क्षण सोचा, आँखें चमकने लगीं; साँस ज़ोर से चलने लगी। उसने उनका सर उठा अपनी गोदी में रख लिया। श्याम किशोर ने धीरे से अपने दोनों हाथों को उठा कर उसके गले में डाल दिया किरण के बाल श्याम किशोर के चेहरे पर छा गये। उन्होंने धीरे से उन्हें चूम लिया। एकाएक किवाड़ा खुला किशोरी भीतर आई, वह किरण को भोजन के लिये तलाश रही थी। सामने का दृश्य

देख कर उसके पैरों के नीच से धरती खिसक गई। उसकी आँखों के सामने अँधेरा छाने लगा। वह काठ सी मार गई। किरण सोफ़े पर से उठ खड़ी हुई और रूमाल से हाथ पोछने लगी। श्याम किशोर चुपचाप लेटे रहे। लज्जा और ग्लानि से उनका मुँह पीला पड़ गया। किसी के मुँह से एक शब्द भी न निकला। पाप कायर होता है। श्याम किशोर अपनी पत्नी को बहुत चाहते थे। उससे क्षमा माँगी, वह उनकी गोदी में सिर रख कर चुप चाप रोती रही। किरण भूखी बाघिन की भाँति चुपचाप अपने कमरे में रहने लगी। श्याम किशोर ने उसे उसके घर भेजने का प्रस्ताव किया पर किशोरी ने रोक दिया। आज कल घर का सब काम किरण ही करती थी। उसने कहा यदि भेजना ही है तो जब मैं काम करने लायक़ हो जाऊँगी तब भेजना, मुझे तुम्हारे लिये कुछ डर नहीं यदि मेरा प्रेम सच्चा है तो तुम कहीं नहीं जा सकते, वह गर्भवती थी। किरण के दिन बड़ी बुरी तरह से कट रहे थे, न उसके साथ कोई हँसने वाला था न बोलने वाला। कभी वह सोचती कि वापस घर चली जाऊँ। उसकी ससुराल में तो कोई था नहीं, नैहर में माता पिता थे। पर यह सोच कर कि जब इतनी दूर आ गई हूँ तब पीछे जाना उचित नही वह रुक जाती। किशोरी के बच्चा पैदा हुआ। किरण के उत्साह और खुशी की

कुछ थाह न थी, उसने दिल खोल कर उत्सव मनाया। उसका कहना था कि जो कुछ मैंने खोया था बच्चे के रूप में पा लिया। किरण का व्यवहार देख कर किशोरी उस पर जान देने लगी। किरण ने अपने आनन्द के आँसुओं से उसके दिल का मैल धो दिया। वह बार बार कहती, मेरे लिये अब आधार मिल गया, मेरा जीवन कट जायगा। यह बच्चा मेरा है, पर इस कुटिल विधाता की गति कौन जानता है किशोरी को ठंडक लग गई। उसको वेग से ज्वर आने लगा, डाक्टरों की भीड़ लग गई। किरण अपना जी होम कर सेवा करने लगी। आठों पहर किशोरी के सिरहाने बैठी रहती। उसको अपने हाथों के अपयश को छुड़ाना था। किशोरी रह रह कर अपने नवजात शिशु के लिये व्याकुल हो जाती। बच्चा किरण की देख रेख में था। पर पौधा जल न पाकर मुर्झाने लगा। किशोर ने गाय तलाशी पर सीघ्र न मिली पाँचवें रोज़ रात को जब सब सो रहे थे किरण किशोरी के तलवे सहरा रही थी बच्चा चिहुँक उठा। किरण दौड़ कर बच्चे के पास गई पर दीपक बुझ चुकाथा किशोरी का दुर्बल हृदय उस भारी ठेस को न सह सका। वह बेहोश हो गई, फिर होश न हुआ। किरण चिल्ला उठी। सारा घर जाग उठा परचिड़िया पिंजड़े से उड़ चुकी थी। किरण ने अपना सर फोड़ना चाहा पर श्याम किशोर ने उसे पकड़ लिया।

३

संसार का कालचक्र किसी की परवाह नहीं करता। वह अपने स्वाभाविक गति से चला जाता है। श्याम किशोर की गृहस्थी का सारा बोझ किरण के सिर पर आ पड़ा उनके कार्यक्रम में कुछ अन्तर न पड़ा। वे ठीक समय पर कचहरी जाते, ठीक समय पर भोजन मिलता। बिस्तर ठीक से बिछा मिलता पर उस बिस्तरे पर सोने वाला कोई न था। वे रोज सोचते थे कि आज कोई न कोई अवश्य मिलेगा; बड़ी आशा लगा कर जाते थे पर उसको खाली पाकर निराश हो जाते। किरण उनको पक्षी की भांति दाने दे देकर परचाती पर पास आने पर झिड़क देती। वे तड़प कर रह जाते। वे किरण से बातें करते, कभी २ हास परिहास भी कर लेते पर उसका उदासीन चेहरा देख कर आगे बढ़ने की हिम्मत न होती। एक रोज किरण सो रही थी, श्याम किशोर बाहर से घूम कर आये, उसको सोती देख उसके सिरहाने पर जाकर बैठ गये। धीरे २ उसके सर पर हाथ फेरने लगे। झुक कर धीरे से उसको चूम लिया इतने में किरण की आँखें खुल गई—पर न उनमें रोष था न प्रेम, वह उठ कर बैठ गई, पंखी लेकर हवा करने लगी। किशोर कुछ देर तक चुप चाप बैठे रहे। एकाएक उठ कर खड़े हो गये। उनके मुख से अनायास शब्द निकल पड़े 'जो मेरी है उसके लिये

इतनी हिचक क्यों'। उन्होंने किरण का हाथ पकड़ कर कहा, 'चलो बाग़ में घूमें'। किरण ने अन्य मनस्क होकर कहा, 'चलो'।

बाग़ में घूमते २ किशोर ने किरण से व्यग्र होकर पूछा। 'किरण तुम क्या चाहती हो'? किरण ने संक्षेप में दूसरी ओर देखते हुये उत्तर दिया, 'कुछ नहीं'।

किशोर—क्या हम लोगों का जीवन इसी तरह व्यतीत होगा?

किरण—क्यों क्या हानि है?

किशोर—क्या जन्म भर हम लोग रोने और जलने के लिये ही बनाये गये हैं?

किरण—नहीं तो, रोने जलने की जरूरत ही क्या है?

किशोर—जरूरत तो नहीं थी तुम ख़ामख्वाह पैदा कर रही हो?

किरण—मैं?

किशोर—हाँ, तुम!

किरण—झूठ। उसने अपना हाथ छुड़ा कर कहा, क्या चार वर्ष की बात याद है।

किशोर ने नीचे की ओर देखते हुये कहा, 'पर अब गत बातों को सोचना व्यर्थ है। मैं अपनी भूल ठीक करने के लिये तय्यार हूँ।'

किरण—कभी मैंने भी यह सोचा था।

किशोर—मैं तुमसे विवाह करने को तय्यार हूँ।

किरण—पर अब मैं तय्यार नहीं।

किशोर–तो यह व्यवहार क्यों, तुम अपनी राह चलो मैं अपनी।

किरण—यानी आप अपना फिर से विवाह कर आनन्द उठावें और मैं आप का मुँह देखा करूँ।

किशोर—तो फिर उपाय ही क्या है ?

किरण—यह असम्भव है। आपको मालूम है मेरे पति और किशोरी की मृत्यु किस तरह हुई है।

किशोर—नहीं मुझे कोई खास बात नहीं मालूम।

किरण—उनकी हत्या मैंने की है। और इन्हीं हाथों से।

किशोर—(किरण का हाथ पकड़ कर) किरण तुम क्या कहती हो, पागल तो नहीं हुई हो ?

किरण—नहीं मैं पागल नहीं हुई। मैं सत्य कहती हूँ। मैंने ही प्रोफेसर साहब को और किशोरी को स्लो प्वाइज़न (Slow Poison) देकर मारा है।

किशोर ने किरण का हाथ छोड़ दिया। उनका सारा शरीर काँप रहा था, किरण चुप चाप खड़ी थी, उसका चेहरा उदास था, न हर्ष था न विषाद।

किशोर ने करुण स्वर में कहा, 'किरण तुमने ऐसा क्यों किया' ? उनकी आँखों में आँसू भर आया।

किरण ने उदास पर दृढ़ स्वर में कहा—'ईर्षा के कारण'।

सन्देह

सन्देह

कमला—आखिर तुम करना क्या चाहते हो ?

विपिन—कुछ भी नहीं ।

कमला—तुम इन्दिरा को प्यार करते हो ?

विपिन—इससे कैसे इन्कार कर सकता हूँ ।

कमला—तो तुम शादी करने से क्यों इन्कार करते हो ?

विपिन—मैं इसको आवश्यक नहीं समझता ।

कमला ने झल्ला कर कहा—आखिर तुम्हारे प्यार का मतलब क्या ?

विपिन ने मुस्कुराते हुये कहा—कमला सब बातों का मतलब नहीं हुआ करता । मैं इतना जानता हूँ कि मैं उनको प्यार करता हूँ, इसके आगे पीछे कुछ नहीं जानता और न जानना ही चाहता हूँ । वह मैं तुम्हारे लिये छोड़ देता हूँ जिसके हर एक काम में कारण लगा रहता है ।

कमला ने कुछ क्रोधित हो कर कहा—'अच्छी बात है, तुम कुछ न जानो पर मैं सब कुछ जानता हूँ। मैं अभी इन्दिरा के पास जाता हूँ।'

विपिन ने कुछ खिन्न हो कर कहा—'कमला तुम मेरे मित्र हो, तुम जब चाहो और जहाँ चाहो जा सकते हो पर परमेश्वर के लिये मुझे ग़लत न समझना।'

कमला—विपिन, मुझे ढोंग करना नहीं आता। मैं तो जिसको प्यार करता हूँ उसको पाने का भी प्रयत्न करता हूँ। यही मेरा स्वभाव है।

विपिन को कमला की बातें लग गईं उसने नीचे की ओर देखते हुये कहा—'कमला, मैं तुम्हारा स्वभाव जानता हूँ,' इसके आगे वह कुछ न कह सका। घण्टा बज जाने पर दोनों क्लास में चले गये। इतिहास का घण्टा था, प्रोफ़ेसर साहब अभी नहीं आये थे। विपिन इन्दिरा के बग़ल की सीट पर बैठ कर किताबों के पन्ने उलटने लगा। इन्दिरा ने उसको उदास देखकर पूछा कि तबीयत कैसी है। विपिन ने किताब की ओर ही देखते हुये कहा, 'अच्छी है।' कमला इन लोगों की ओर देख कर मुसकरा पड़ा। उसकी मुसकान में मर्म था।

२

कमला और विपिन में बहुत दिनों से मित्रता थी। दोनों मित्रों ने साथ ही विश्व विद्यालय में प्रवेश किया था। इन्दिरा

फ़ैज़ाबाद से आई थी। यहीं पर उससे इन लोगों का साथ हुआ। वह बड़ी ही भोली भाली और सरल चित्त बालिका थी। विश्वास ही उसका जीवन था। वह विपिन को प्यार करती थी पर उसके सिद्धान्तों के समझने में असमर्थ थी। विपिन को उदास देख कर उसको दुःख होता था पर उसको प्रसन्न करने का उपाय वह न जानती थी। वह विपिन के लिये सहर्ष अपने प्राण विसर्जन कर सकती थी पर उसके लिये जीना नहीं जानती थी। उसके व्यवहारों में संकोच के स्थान में बालकपन अधिक था और लज्जा के स्थान में विनोद, वह एक रोज़ क्लास में आई, विपिन और कमला दोनों बैठे बातें कर रहे थे। प्रोफेसर नहीं आये थे, इन्दिरा भी वहीं पर बैठ गई। उसके बालों में एक बहुत सुन्दर गुलाब का फूल लगा हुआ था। कमला ने उसको देखते ही माँगना प्रारम्भ कर दिया। विपिन सोचने लगा, 'इस फूल का उचित स्थान कहाँ पर है।' इन्दिरा ने फूल को सर से खींच कर हाथ में ले लिया और उसके साथ खेलने लगी। कमला के बार बार माँगने पर उसने हँसते हुये कहा कि इस फूल को तो मैं एक ही आदमी को दे सकती हूँ पर इसका उपभोग मैं कर चुकी हूँ और यह जूठा हो गया है इस कारण शायद वे इसको ग्रहण करने में संकोच करेंगे। विपिन के मुँह से एक हलकी सी आह

निकल गई और कमला के ओठों पर उपेक्षा पूर्ण हंसी दिखाई पड़ी। इतने में प्रोफ़ेसर आ गये और सब कोई अपने अपने स्थान पर जाकर बैठ गये।

घण्टा ख़तम होने पर सब कोई बाहर चले गये। विपिन ने देखा कि फूल कुछ मुर्झाया हुआ सा इन्दिरा के सीट के नीचे पड़ा है। उसने उसे ले लिया। कुछ देर तक उसको देखता रहा। अनायास उसकी आँखों में आँसू भर आये और उसके मुँह से अस्पष्ट शब्द निकल पड़े:—'हे फूल! यदि मैं तुम्हारी रक्षा कर पाता और माँ के मन्दिर में तुम्हें अर्पित कर सकता। पर अब तो तुम्हीं मेरे आधार हो।'

इतने में कमला की आवाज़ उसको सुनाई पड़ी। उसने फूल को रुमाल में लपेट कर जेब में रख लिया। कमला हँसता हुआ कमरे में आया और पूछा, 'अकेले में किसका चिन्तन हो रहा है'? विपिन कुछ न बोला।

३

इन्दिरा—कमला बाबू तुम मुझ से झूठ बोल रहे हो। विपिन मुझ से कभी कोई बात नहीं छिपा सकते।

कमला—इसमें बात ही कौन सी है यह तो बहुत ही साधारण सी बात है।

इन्दिरा—साधारण सी बात। उनकी शादी तुम कहते हो होने जा रही है और यह साधारण सी बात है !

कमला—मैं नहीं समझता इसमें इतना चिन्तित होने की कौन सी बात है।

इन्दिरा—पर मैं तो समझती हूँ। उन्होंने कई बार मुझ से कहा था कि वे विवाह न करेंगे।

कमला—करने और कहने में अन्तर होता है।

इन्दिरा—मैं अभी जाकर पूछती हूँ।

कमला—पूछने की कोई ज़रूरत नहीं। यदि तुम्हें प्रमाण की आवश्यकता हो तो मेरे साथ आवो और जैसा मैं कहूँ वैसा ही करना।

दोनों विपिन के कमरे में पहुँचे। वह अपने कमरे में बैठा पढ़ रहा था। इन्दिरा को देखते ही उठ बैठा। इन्दिरा ने पहुँचते ही पानी पीने को माँगा। विपिन ने उसको पानी पीने को दिया। इन्दिरा अपना रुमाल भूल आई थी। पहले तो विपिन ने अपना रुमाल देने के लिये जेब से निकाला पर न मालूम क्या सोच कर आलमारी से एक नया रुमाल निकाल कर इन्दिरा को दे दिया। आलमारी खुलते ही कमला की निगाह उधर गई। उसने एक रेशमी रुमाल निकाल कर कहा, 'अजी इस को दो, यदि देने ही चले हो तो खद्दर का क्या देते हो।' विपिन मना ही करता रहा

पर कमला ने उसको झटक दिया। सूखे हुये गुलाब की पंखड़ियाँ चारों ओर फैल गईं। कमला ने अफ़सोस करते हुये कहा, 'भाई माफ़ करना, मैं नहीं जानता था कि तुमने अपने सुन्दर उपहार को इस ढंग से छिपा रक्खा है। इन्दिरा, देखो अब न कहना कि विपिन क़दर करना नहीं जानते। यह फूल इनकी प्रेमिका के प्रथम प्रेम का चिन्ह है।' विपिन कुछ न बोला। उसका चेहरा सफ़ेद हो गया। इन्दिरा ने कुछ रोष में आ कर पूछा, 'क्यों विपिन बाबू यह किस की मधुर स्मृति है जो इस प्रकार से सुरक्षित है।' विपिन ने दबी निगाह से उसकी ओर देखा पर कुछ बोल न सका। उसकी आँखें डबडबा आईं। कमला यह कहता हुआ कि माफ़ करना, लो हम लोग अब तुम्हारे मनोहर विचिन्तन में विघ्न न डालेंगे इन्दिरा को लेकर बाहर चला गया। विपिन चुपचाप कमरे में खड़ा रहा।

दूसरे रोज प्रातःकाल उसने इन्दिरा में एक अजीब परिवर्तन पाया। पर सब कुछ जानते हुये भी वह अनजान था। कमला उसका मित्र था। विपिन का जी प्रयाग में न लगता था। वह थोड़े रोज़ के लिये बाहर जाना चाहता था। दशहरे की छुट्टी में वह घर को चल पड़ा। चलते समय इन्दिरा से न मिल सका—एक पत्र लिख कर छोड़ गया:—

प्यारी इन्दिरा,

कुछ रात शेष रहने पर ही मैं स्टेशन के लिये चल पड़ा। लालसा लगी रहने पर भी तुम से न मिल सका—कारण कुछ नहीं, तुम्हें सोते समय जगाना उचित न समझा। इन्दिरा, हम दोनों इतने समय के लिये कभी नहीं बिछुड़े थे। देखना समय के बादल कहीं स्मृति को आच्छादित न कर दें। तुम पर मेरा अटल विश्वास है। फिर भी तुम मेरी हो इसी कारण कहता हूँ कि नये मित्रों के सम्पर्क में आने का परिणाम यह न हो कि तुम्हारे जीवन का प्रवाह ही बदल जाय, तुम्हारी जीवन प्रगति नया रूप धारण कर तुम्हें तुम्हारे आदर्श के विमुख खींचले जाय।—इन्दिरा, प्रेम करना, सम्बन्ध रखना पर भूल न करना—सप्रेम

तुम्हारा ही

विपिन

४

छुट्टियों के दिन विपिन के लिये पहाड़ हो गये। काटे नहीं कटते थे। वह समझता था, जानता था कि यह सब कार्रवाई कमला की है पर उसकी ज़बान बन्द थी। कमला उस का मित्र है और वह अपने मित्र के विरुद्ध कुछ नहीं कर सकता। पर साथ ही इन्दिरा पर उसको दृढ़ विश्वास था। वह सोचता था कि इन्दिरा कभी मेरे ऊपर सन्देह नहीं कर सकती। पर

इस बार जब से वह प्रयाग से आया उसके पास इन्दिरा का एक भी पत्र न आया। यह एक नवीन बात थी। उसने भी इधर बहुत रोज़ से कोई पत्र नहीं लिखा था। चित्त बहुत बेचैन होने पर उसने इन्दिरा को एक पत्र लिखा :—

प्यारी इन्दिरा,

बहुत दिनों के बाद आज तुम्हें पत्र लिख रहा हूँ। मुझे मालूम है कि तुम रूठ गई हो। तुम्हें मनाने तो नहीं आऊँगा। परन्तु इतना अवश्य कहूँगा कि क्या तुम्हें मुझसे ही रूठना था।

कल सन्ध्या से न जाने क्यों तुम्हारी बार बार सुधि आ रही है। रात में भी शान्ति न मिल सकी। विवश हो तुम्हें पत्र लिखने बैठा। मैं हूँ तुम भी हो पर लिखूँ तो क्या लिखूँ? अपराधी हूँ। बिना तुम्हारी आज्ञा के तुम्हारी चीज़ चुराई। पर क्या यह मेरा अपराध अक्षम्य है? इन्दिरा तुम तो मेरे अपराधों को गिनती ही न थीं तो क्या इसको क्षमा न कर दोगी। मैं पापी सही पर पाप करना भी तो तुम्हीं ने सिखाया है।

इन्दिरा, चलने के एक रोज़ पहले मैं ने तुम से पूछा था कि पत्र भेजोगी। पता नहीं उस समय तुम किस ध्यान में मग्न थी तुमने कहा कि यदि आप पत्र भेजेंगे तो मैं भी पत्र भेजने का प्रयत्न करूँगी।' तुम समझ सकती हो इससे मुझे कितना दुःख हुआ था, मैंने एक बार नहीं कई बार तुमसे कहा

है कि प्यार करना, पर व्यापार न करना। तुम मुझे प्यार करती हो क्या इस लिये कि मैं तुम्हें प्यार करता हूँ। धान के बदले धान और गेहूँ के बदले गेहूँ तो व्यापार हुआ इन्दिरा प्यार नहीं। मैं पत्र न लिखूं तो क्या तुम मुझे भूल जाओगी? मेरा पत्र लिखना क्या तुम्हारी सुधि की फ़ीस है? परन्तु नहीं मैंने भूल की है, अब पछताना पड़ता है। तुमने ठीक ही कहा था इससे अधिक की आशा मुझे करनी ही न चाहिये थी। मुझे क्षमा करना, मैं भूल गया था कि तुमने अपने भावी इष्ट देव के लिये भी तो अपने को सुरक्षित कर रक्खा है। वे तुम्हें कब मिलेंगे? ईश्वर करें शीघ्र मिलैं, मैं अपने अपराध की क्षमा उन्हीं से माँगूगा। क्योंकि तुम तो रूठ ही गई हो फिर भला क्षमा काहे को करोगी। रहने दो तुमसे क्षमा माँगता भी नहीं, तुम्हारे देव जहाँ कहीं भी हों सुन रक्खें मुझे अपराध न लगायेंगे, इन्दिरा, मेरी ओर से उनसे मिलने पर उन्हें विश्वास दिला देना मैंने उनका कोई भी अधिकार नहीं छीना है और न मैंने कभी उनकी वस्तु ही अपनाने का प्रयत्न किया है। तुम जानती हो हम लोगों का व्यवहार कैसा है। स्त्री पुरुषों में पवित्र भाव का स्थिति रहना न तो अस्वाभाविक ही है न असम्भव ही!

पिछली बातें भूल जाओ, कभी कभी दो चार शब्द लिख दिया करो। इन्दिरा, यदि तुम अभी से इतना रूठने लगी तो

ईश्वर जाने जब किसी के गले का हार बन जावोगी तब क्या करोगी। कुछ भी हो, सुखी रहो—यही मेरी आन्तरिक अभिलाषा है। मैंने तो चाहा था कि हम दोनों स्वतन्त्र रह कर भारत माँ की आजन्म सेवा करते पर समय बली होता है।

अपने नवीन मित्रों को मेरा प्रणाम कहना।

इन्दिरा, आज एक बात अपने स्वभाव के प्रतिकूल लिख रहा हूँ। मेरा यह पत्र किसी को न दिखाना। पढ़ कर फाड़ देना रख कर क्या करोगी।

सप्रेम—चुम्बन

तुम्हारा ही वही

विपिन

इन्दिरा ने पत्र पढ़ कर कमला को दे दिया। अपराधों की स्वीकृति थी। कमला ने बतलाया कि विपिन का विचार क्या था। वह इन्दिरा का किस प्रकार सर्व नाश कर रहा था। इन्दिरा सहम गई, उसने अपने आप को कमला के हाथों में समर्पण कर दिया। उसने विश्वासघात का ऐसा जघन्य चित्र कभी नहीं देखा था। वह विपिन को बड़ा ही सदाचारी समझती थी। उसकी आँखों में आँसू भर आये। कमला ने मुसकुराते हुये पूछा, 'क्या सोच रही हो, आप के विपिन बाबू तो देवता थे।' इन्दिरा ने कमला की ओर देखते हुये कहा—'हाँ

अवश्य देवता थे और हैं पर उम्र का तक़ाजा भी तो कोई चीज़ है।'

५

उदासीन विपिन जीवन से एक दम विरक्त होगया। वह बिल्कुल ही अपने अस्तित्व को मिटा देना चाहता था। कमला और इन्दिरा में बड़ी घनी मित्रता हो गई थी। वह दोनों एक साथ •रहते और उठते बैठते थे। विपिन का साथ बचाया जाता था। विपिन विष के घूँट पीकर रह जाता था।

माघ का महीना था। कुम्भ का मेला भीड़ आशा से अधिक थी और घाट था छोटा। प्रबन्ध करना मुश्किल हो रहा था। भीड़ समुद्र की लहरों की भाँति उठती और जो कुछ पाती उसको डुबाती हुई आगे बढ़ जाती थी। स्वयं सेवक प्राणों की बाज़ी लगा कर काम कर रहे थे पर भीड़ पर कुछ बस नहीं चल रहा था।

करीब नौ बजे होंगे, कमला ने इन्दिरा से मेला देखने चलने को कहा। दोनों चल पड़े। मेले में विपिन मिला, वह स्वयं सेवकों का कप्तान था। जल्दी २ घाट की ओर जा रहा था, भीड़ रुकती नहीं थी, घाट पर तिल रखने को स्थान न था। इन्दिरा और कमला भी तमाशा देखने के लिये घाट की ओर चल पड़े। जहाँ पर भीड़ थी दोनों जाकर खड़े हो गये। स्वयं सेवक से मेले के सम्बन्ध में बातें करने लगे। स्वयं सेवकों

ने चेन बना कर भीड़ को रोक रक्खा था। स्वयं सेवक ने इन लोगों से सामने से हट जाने को कहा पर कमला ने हँसते हुये कहा, 'इन उजड्डों से डरने की कोई बात नहीं' इतने में ही पीछे से एक भारी धक्का आया। स्वयं सेवकों के पैर लड़खड़ा गये, चेन टूट गई। इन्दिरा का हाथ कमला के हाथों में था। भीड़ के बढ़ते ही कमला पीछे हट गया, इन्दिरा भीड़ में फँस गई, उसके पैर उखड़ गये, वह गिर पड़ी। पागल भीड़ उसके ऊपर से निकल गई। इन्दिरा के जीवन की किसी को आशा न रही। इतने में बिजली की तरह चमक कर भीड़ को चीरता हुआ एक आदमी उसके पास पहुँचा। उसको उठाना असम्भव था। एक क्षण में उसके प्राण निकल जाने का भय था। वह बहादुर युवक अपने जान की कुछ परवा न कर इन्दिरा के ऊपर लेट गया। हजारों की भीड़ उसके ऊपर से निकल गई। भीड़ हटने पर स्वयं सेवकों ने दोनो को बेहोश पाया। वे लोग विपिन के उपचार में लग गये।

जब विपिन को होश आया उसने देखा कि इन्दिरा बेहोश पड़ी है दो तीन स्वयं सेवक उसको होश में ले आने का प्रयत्न कर रहे हैं। विपिन के सीने में चोट लगी थी। उसके मुंह से खून गिर रहा था। पर वीर अपनी व्यथा भूल गया। इन्दिरा को अस्पताल ले गया। डाक्टर ने परीक्षा की, बेहोशी बताई।

विपिन ने अपने बारे में कुछ भी नहीं कहा। वह अपने प्राणों की बाजी लगा कर इन्दिरा की सेवा करने लगा।

आज इन्दिरा की हालत पहले से कुछ अच्छी है। उसको थोड़ा थोड़ा होश भी आ गया है। पर वह अब भी आदमियों को पहचान नहीं सकती। इन्दिरा लेटी हुई है, विपिन धीरे धीरे उसके सर को दबा रहा है। कमरे में और कोई भी नहीं है। इन्दिरा ने धीरे से पुकारा 'कमला.' विपिन की आँखें भर आईं। बहुत कुछ रोकने पर भी आंसू की दो बूंदें उसकी आंखों से टपक कर इन्दिरा के ललाट पर गिर पड़ीं। एक दिन था जब इन्दिरा सोते सोते विपिन को पुकार बैठती थी। वह वहां से उठ कर बाहर चला गया। जहां पर कमला था। उसने कमला को इन्दिरा के पास भेज दिया और साथ ही यह भी कह दिया कि इन्दिरा को यह न मालूम हो कि उसका बचाने वाला कौन है। उसने कमला को समझाते हुये कहा, 'देखो कमला, मैं नहीं जानता क्यों इन्दिरा के विचार मेरे प्रति अच्छे नहीं हैं। वह मेरा नाम सुनते ही उदास हो जाती है। यदि उसको मालूम हो जायगा कि उसका बचाने वाला मैं था तो उसको बहुत बुरा लगेगा। तुम कुछ न बतलाना। यदि बहुत हठ करे तो कह देना कि तुमने उसे बचाया है। इससे उसको बहुत सान्त्वना मिलेगी।' कमला ने विपिन की बातों का अनुमोदन करते हुये

कहा, 'हाँ विपिन यह तो सत्य है। इन्दिरा तुम्हारा नाम सुनते ही जल उठती है। मैंने कई बार चाहा कि उसके विचारों में कुछ परिवर्तन कर दूँ पर कुछ फल न हुआ। तुम जैसा कहोगे वैसा ही होगा। यदि तुमको अपना नाम बतलाने में शर्म लगती है तो मैं अपना ही नाम बता दूँगा।'

विपिन ने उदासीन दृष्टि से कमला की ओर देखते हुये कहा, 'कमला यदि इन्दिरा मुझको प्यार नहीं कर सकती तो कोई हर्ज नहीं पर इतना मैं अवश्य चाहता हूँ कि मुझसे घृणा न करे। यदि हो सका तो मैं उनसे बातें करूँगा।' कमला ने उसको रोकते हुये कहा, 'इसकी कोई जरूरत नहीं मैं स्वयं तुम्हारे लिये प्रयत्न कर रहा हूँ। पर यह तो बताओ कि और किस किस को मालूम है कि इन्दिरा को तुमने बचाया है'।

विपिन ने कहा, 'तुम कुछ चिन्ता न करो। संघ के दो तीन लड़कों को मालूम है पर मैं उनको मना कर दूँगा वे लोग तुम्हारा ही नाम बतलावेंगे।' इतने में नर्स ने आकर कहा, बाई जी कमला बाबू को बुला रही हैं। कमला शीघ्र इन्दिरा के पास चला गया। विपिन कुछ सोचता हुआ अपने निवास स्थान की ओर चल पड़ा। आज पहले पहल उसको अपने जीवन से घृणा हुई। वीर जो रण क्षेत्र में अजय और अटल था घर में आकर शिशु से भी दुर्बल हो गया। वह अपने बिछौने पर लेट गया।

कमरा गन्दा हो रहा था। क़रीब एक हफ्ते से झाडू नहीं दी गई थी। नौकर ने बाबू को बाहर गया जान कर आना बन्द कर दिया था। विपिन एकान्त से घबड़ा उठा।

वह कमरा उसे बड़ा भयानक लग रहा था। बाहर चहल पहल थी पर उसका हृदय शून्य था। विपिन सोचने लगा। उसने कभी अपने जीवन भर में कोई अनुचित काम नहीं किया सेवा और प्रेम यही दो उसके जीवन के व्रत थे। उसने कभी सोचा था कि इन्दिरा को लेकर वह देश-सेवा का कार्य्य करेगा। उसको विश्वास था कि वह भारत के युवकों में एक नया जीवन पैदा कर देगा। उसको विश्वास था कि इन्दिरा का जीवन एक आदर्श रमणी का जीवन होगा। वह सोचता था कि इन्दिरा का हृदय अच्छी भावनाओं से भरा हुआ है। उनको दृढ़ करने की आवश्यकता है। पर वह नहीं समझता था कि गुलाब के सुन्दर फूल की मृदु और कोमल पंखड़ियाँ उसके लिये विषधर नाग हो जावेंगी। उसने इन्दिरा को कभी अपनाना नहीं चाहा। उसके तो जीवन का सिद्धान्त ही समर्पण था। उसने किस कुघड़ी में इन्दिरा को पत्र लिखा था उसके पत्र ही उसके लिये काल हो गये।

कमला के लगाये हुये अर्थों को सुन कर स्वयं एक बार विपिन को अपने ऊपर सन्देह होने लगा था। विपिन सोचते सोचते घबड़ा उठा। वह बाहर जाने के लिये उठा पर उठ न

सका। उसकी छाती में असह्य पीड़ा हो रही थी। प्यास से उसका गला सूख रहा था पर घर में एक बूँद पानी न था। जिस तारे को देख कर नाविक आगे बढ़ रहा था वह अस्त हो गया। चारों ओर निबिड़ अन्धकार था। जीवन से निराश होकर नाविक ने डाँड़ छोड़ दिया। नाव बह चली। वह उसी पर लेट गया। पानी की तरङ्गे उसको झूला झुलाने लगीं। विपिन के मुँह से फिर ख़ून गिरने लगा। उसको बड़ी कड़ी चोट लगी थी। अभी तक इन्दिरा की सेवा में लगे रहने के कारण वह अपनी चोट को भूला हुआ था। मौका पाकर वह दूने वेग से उमड़ आई थी। सैकड़ों का जीवन बचाने वाला आज अकेला कमरे में पड़ा तड़प रहा है। उसके पास आज कोई एक बूँद पानी देने वाला नहीं है। वह रह रह कर व्याकुल हो उठता है। उसने धीरे से कहा, 'इन्दिरा, यदि कभी मैने कोई अपराध किया है तो केवल यही कि मैंने तुमको प्यार किया।'

६

विपिन कुमार की मृत्यु पर आज विश्वविद्यालय में शोक सभा है। इनकी आकस्मिक मृत्यु पर तरह तरह की गप्पें उड़ रही हैं। उनके प्रिय मित्र कमला बाबू का कहना है कि उनको बहुत रोज़ से थाइसिस की बीमारी थी। उसी बीमारी से उनकी मृत्यु हुई है। कहना न चाहिये पर सत्य के अनुरोध के कारण

उनको अपने मित्र मण्डली को बतलाना ही पड़ा कि विपिन के चरित्र के विषय में भी दृढ़ता पूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता।

किसी किसी का कहना है उनकी मृत्यु का कारण प्रेम रोग है। हाल (Hall) बिल्कुल भर गया है। विपिन विद्यालय का एक रत्न था। विद्यालय को उस पर गर्व था, प्रोफेसरों को उस पर अभिमान, प्रधान अध्यापक उसको अपना भाई कह कर परिचय देते थे। सेवा संघ का तो वह प्राण ही था। संघ के सदस्य उसकी मृत्यु से बिल्कुल निर्जीव से हो गये थे। इन्दिरा का हृदय भी रह रह कर धड़क उठता था। उसका जी आज बहुत उदास था, न मालूम क्यों उसको विपिन का ध्यान आ जाता था। वह जितना ही उसे भुलाना चाहती थी उतना ही उसका स्मरण आता था, उसका हृदय कह रहा था कि विपिन की मृत्यु रहस्य मय है। उसने कमला से सभा में चलने के लिये कहा पर कमला ने टाल मटोल किया और इन्दिरा को भी जाने से मना किया। इस पर इन्दिरा को बहुत आश्चर्य्य हुआ। उसने कहा, 'कुछ भी हो कमला, विपिन थे तो हमीं लोगों में से; भूल सब से होती है। मृत्यु के पश्चात क्या घृणा और क्या प्रेम।' दोनों सभा के लिये चल पड़े, कमला का हृदय धड़क रहा था, प्रस्ताव पेश किया गया। व्याख्यान होने लगे, सभी ने विपिन के गुण गाये। इन्दिरा चुपचाप बैठी सुन रही थी।

सभा समाप्त होने को थी इतने में विश्व विद्यालय के प्राक्टर की कार पहुँची, वे पसीने से तर थे। फुल स्पीड (Speed) में कार ले आये थे, उनके चेहरे पर शोक पर सन्तोष के भाव थे। उनके साथ में सेवा संघ के दो सदस्य और थे, विपिन की इस अचानक मृत्यु से प्राक्टर को बहुत दुःख हुआ था, वे विपिन को बहुत प्यार करते थे, और साथ ही यह जान कर कि विपिन की बड़ी शोचनीय मृत्यु हुई है वे परेशान थे और पूरा पता लगाने का प्रयत्न कर रहे थे। डायस पर आकर उन्होंने धीरे से दृढ़ स्वर में कहना आरम्भ किया, 'आप लोग रोज़ ही किसी न किसी मनुष्य का मृत्यु समाचार पढ़ते हैं पर इस प्रकार की वीर और शोचनीय मृत्यु शायद ही कहीं हुई हो, विपिन को आप सभी कोई जानते हैं। उसने सभी के हृदय में बहुत शीघ्र स्थान बना लिया था। उसके जीवन का व्रत सेवा था, उस महान और वीर व्यक्ति की मृत्यु का कारण है सन्देह, जिसको उसने अपने जीवन में सब से अधिक प्यार किया उसी ने उसके ऊपर सन्देह किया। प्रेम का अर्थ लालसा लगाया गया, अभिमानी प्रेमी इसको न सह सका और हमेशा के लिये चल बसा, प्रमाण के लिये मेरे हाथ में उसकी यह डायरी है, वह लिखता है, "मैं नहीं जानता था कि देवी का प्रसाद भी मेरे लिये कालकूट विष हो जावेगा। मैं कैसे कहूं कि यह गुलाब तुम्हारा है। हा कमला

तुम जान बूझ कर भी अनजान बनते हो, मेरा भाग्य ।" उसकी मृत्यु का कारण अपने ही विद्यालय की श्रीमती इन्दिरा देवी को बचाना है। उस रोज जब वे भीड़ के नीचे पड़ गई थीं विपिन ही वह व्यक्ति था जो अपने जीवन की परवाह न कर शेर की भांति भीड़ को चीरता हुआ उनके पास पहुँचा था, और उनको अपने शरीर से ढक लिया था, उसके फेफड़े फट गये पर उसने उसकी तनिक भी परवाह नहीं की, और तीन रोज़ तक लगातार वह इन्दिरा देवी की सेवा करता रहा। जब उनको होश आ गया तब वह अपने घर पर गया और अन्त में कहते मेरा हृदय विदीर्ण होता है कि वही विपिन एक बूँद पानी के लिये तड़प कर मर गया ....मुझे दुःख है कि मैं आगे कुछ नहीं कह सकता मेरा गला भरा आ रहा है। मैं अपने साथ उन दोनों विद्यार्थियों को लेता आया हूँ जिन्होंने भीड़ में विपिन को सहायता की थी। और जिन्हें विपिन ने यह बताने से मना कर दिया था। वे आपसे पूरा पूरा किस्सा बतावेंगे।'

उपस्थित विद्यार्थियों की आँखें आँसुओं से भर गईं थीं। इन्दिरा बिल्कुल चुपचाप बैठी हुई थी। उसका मस्तिष्क चक्कर कर रहा था। वह एकाएक चिल्ला उठी 'धोखा !.........कमला' तुमने मुझे धोखा क्यों...।' इसके आगे वह कुछ न कह सकी।

दुःखद-स्मृति

दुःखद-स्मृति

प्रतिभा—क्यों तुम आजकल कुछ खिन्न क्यों रहते हो। जब से प्रयाग आये तुम अक्सर उदास हो जाते हो, पूछने पर केवल हँस देते हो।

सुरेन्द्र—नहीं प्रतिभा कोई विशेष बात नहीं है। गङ्गा को देखकर न जाने क्यों मेरा हृदय उदास हो जाता है।

प्रतिभा—तुम तो प्रकृति देवी के उपासक हो। तुम्हें प्राकृतिक दृश्य बहुत प्यारे हैं इसी कारण मैं अक्सर गङ्गा तट की ओर घूमने निकल आती हूँ। कल रात को भी तुम्हारा चेहरा कुछ उतरा हुआ था। मैंने सोचा कि प्रातःकाल गङ्गा तट पर घूमने से तबियत बहल जायगी इस कारण इधर निकल आई। यदि तुम्हें कुछ कष्ट हो रहा हो तो चलो बंगले पर लौट चलें।

सुरेन्द्र—प्रतिभा, तुमने कई बार मेरे बचपन का इतिहास जानना चाहा है पर मैंने कभी नहीं बतलाया। कुछ न कुछ बहाना

कर दिया करता था। मैं देखता हूँ कि उसका छिपाना मेरे लिये असम्भव सा हो रहा है। आओ यहाँ से थोड़ी दूर पर एक बड़ा बट का पेड़ गङ्गा के किनारे है उसके नीचे बैठकर तुम्हें हम अपने बचपन का क़िस्सा सुनावें। आज इतवार है, कचहरी भी नहीं जाना है।

प्रतिभा—प्राणधन यद्यपि तुम्हारा क़िस्सा सुनने की मेरी बड़ी प्रबल इच्छा है पर यदि तुम्हें कुछ कष्ट हो तो रहने दो। मैं नहीं सुनना चाहती।

सुरेन्द्र—नहीं आज मुझे कोई कष्ट न होगा। हाँ, यदि इसके पहले मुझे किसी से कहना पड़ता तो अवश्य कष्ट होता। मेरे पिता का शरीरान्त कब हुआ मैं नहीं जानता। जब मुझे होश हुआ मैंने अपनी माता को ही पिता और माता दोनों के स्थान पर पाया। मेरा जन्म गांव के एक साधारण घर में हुआ था। मेरी माता पिता जी की मृत्यु के पश्चात् अपने नैहर चली गई थीं, वहीं पर उनका जीवन व्यतीत हुआ और मेरा बाल्यकाल। उस ग्राम में एक हिन्दी मिडिल स्कूल था। यह बड़े सौभाग्य की बात थी। मैं भी वहीं पर पढ़ने के लिये भेजा गया। उस समय मेरी अवस्था ६, ७ वर्ष से अधिक नहीं होगी। मेरे स्कूल के पास ही एक आम का बड़ा बाग़ था। उसमें

ग्राम के सब मनुष्यों का कुछ न कुछ हिस्सा था। मेरा भी था। मैं अक्सर वहीं पर खेला करता। साथी बहुत से थे। पार्वती भी उसी बाग़ में खेलती थी। उसका मकान मेरे मकान से कुछ दूर पर था। वह गांव के ज़मींदार की लड़की थी। उसके दोनों भाई मेरे साथ पढ़ते थे। पार्वती और मुझसे पटती थी। धीरे धीरे हम लोगों में खूब घनिष्टता हो गई पर पार्वती के बड़े भाई रामसिंह से मेरी मित्रता न हो सकी। वह पाठशाले में मेरा प्रतिद्वन्दी था। हम लोगों को अक्सर बराबर ही नम्बर मिला करते थे। धीरे धीरे हम लोग मिडिल में पहुँच गये, हम लोगों के स्वच्छ कोमल ओठों पर मृदु स्याही की रेखा फिरने लगी। बदन हम लोगों का गठीला था और फुर्तीला, एक अखाड़ा खोल रक्खा था। शाम को कुश्ती होती और भैंस का ताज़ा ताज़ा दूध पीते। ठंडई अक्सर रामसिंह के यहाँ ही छनती थी। पार्वती बनाती थी और हम लोग खूब मज़े से पीते थे। परीक्षा का दिन पास आया। यदि मैं परीक्षा में न बैठूं तो रामसिंह अवश्य प्रथम हो। यह चिन्ता रामसिंह को सताने लगी। उसने बहुत सोचा पर उसके सोचने में कुटिल नीति न थी। वह मुझे खुले मैदान लाठी मार सकता था पर शर्बत में विष नहीं मिला

सकता था। अन्त में यही स्थिर हुआ। उसका छोटा भाई रघुपति दूसरे गाँव गया था। रात को जब मैं रामसिंह के यहाँ से घर जाने लगता रास्ते में तालाब पर मुझे मारने की सलाह पक्की हुई। मंत्रणा किसी गुप्त सभा-भवन में नहीं हुई थी। पार्वती को यह बात मालूम हो गई। वह इन लोगों का प्रस्ताव सुन कर तिलमिला उठी। उसका हृदय दहल उठा। वह अधीर हो उठी। मैं अखाड़े के लिए चल चुका हूँगा इसलिये मेरे यहाँ जाना भी व्यर्थ था। हा, यदि वह पढ़ी होती केवल इतना लिख सकती 'बच कर घर जाना रास्ते में कुछ बदमाश तुम्हें मारने के लिए छिपे हैं।' केवल उसका इतना सन्देश पहुँचाने के लिए वह सब कुछ अर्पण करने के लिए तय्यार थी। इस अन्धकार में केवल एक आशा की किरण दिखाई पड़ी। शायद शाम तक में रघुपति आ जाय। वह मेरा पक्का मित्र है। आशा आसमान में घोंसले बनाती है। देखते देखते शाम हो गई रघुपति न आया। पार्वती ने नित्त की भाँति शर्बत बनाया पर पानी के स्थान में अपने आँसुओं से घोला। मैं रामू के साथ उसके यहाँ गया। रामू भीतर आकर शर्बत ले गया। शर्बत ले गये मुश्किल से पाँच मिनट हुये होंगे पर पार्वती को मालूम हुआ कि घण्टों हो गया। सोचने का अवसर नहीं था।

वह एकदम घर से निकल पड़ी मेरे मकान की ओर दौड़ी। वह मुझे तालाब के पास पहुँचने के पहले ही पकड़ लेना चाहती थी। पर ज्यों ज्यों महुये का पेड़ पास आता जाता था त्यों त्यों उसका दिल बैठा जाता था। अंधेरा घना हो चला था एका एक सिर पर किसी की लाठी लगी और वह गिर पड़ी। मैं शर्बत पीकर घर की ओर तेज़ी से चला। चाँदनी छिटक रही थी पर अभी ठीक से प्रकाश नहीं हुआ था। मुझे तालाब के पास कोई सफ़ेद चीज़ पड़ी दिखाई पड़ी, झिझका खड़ा हो गया, हिम्मत कर आगे बढ़ा, देखा कि एक स्त्री बेहोश पड़ी है। तालाब से पानी लाकर उसके मुँह पर छींटे दिये। धीरे से उसका सिर अपनी गोद में रख कर हवा करने लगा—उसने आँखें खोल दी, वह पार्वती थी। मुझे देख कर फिर से आँखें बन्द कर ली, धीरे से आवाज़ निकली, 'तुम बच गये'—मुझे बड़ा आश्चर्य्य हुआ, मैंने पूछा 'पार्वती तुम यहाँ कहां?' उसने पूरा क़िस्सा सुना दिया, मुझे क्रोधित देख उसने मेरा हाथ पकड़ कर कहा, 'प्रतिज्ञा करो कि इस घटना का हाल किसी से न कहोगे और न भइया से इसका बदला लोगे।' मैंने कहा, 'अच्छा' मैंने कृतज्ञता भरी दृष्टि से पार्वती को देखा और कहा 'तुमने मेरे साथ बड़ा उपकार किया है'—पर उसको

उससे विशेष आनन्द न हुआ, वह मेरी आँखों में दूसरे ही भाव देखना चाहती थी। वह अब अबोध बालिका न थी, मैंने उससे कहा, 'चलो पहुँचा आऊँ अकेले कैसे जाओगी' उसने विरक्त स्वर में मुस्कराते हुये कहा, 'जैसे अकेली आई हूँ'।

मैं परीक्षा में पास होकर प्रयाग पढ़ने चला आया, यहाँ पर मेरा परिचय एक काश्मीरी परिवार से हो गया। उस परिवार के दो लड़के मेरे साथ पढ़ते थे, इनमें पर्दा नहीं होता उनकी बहिन राजदुलारी से भी मेरी जान पहचान हो गई। हम लोग आपस में खूब हिल मिल गये। अक्सर मैं उन्हीं के यहाँ खाना खाता साथ साथ पढ़ता और 'राजन' के गाने सुनता। इन दिनों मैं घर बहुत ही कम जाता, केवल गर्मियों की छुट्टियों में जब वह काश्मीरी परिवार पहाड़ों पर चला जाता मैं मकान जाता पर दिल मकान पर न रहता। इन्हीं दिनों गौड़ बिल कौन्सिल में पेश था। उस पर हम लोग आपस में खूब बहस करते, 'राजन' मेरा पक्ष लिया करती। पार्वती की शादी हो गई, वह बोल न सकी हृदय पर पत्थर रख कर ससुराल गई। वहाँ से थोड़े ही दिनों में वापिस आ गई, वह बीमार थी बचने की कोई आशा न थी, मेरे पास भी समाचार आया, न चाहते हुये भी मुझे घर जाना पड़ा,

ग्राम की यही प्रथा है। पार्वती को मैं देखने गया, उसकी दशा बहुत ही ख़राब हो गई थी, वह थोड़े ही दिनों की मेहमान थी। कुछ देर तक मुझे देखती रही—धीरे स्वर में बोली, 'देखती हूँ अब तुम बिल्कुल शहराती हो गये हो। घर के प्राणियों की कुछ भी सुधि नहीं रहती' मैं कुछ न बोला—उसकी माँ के आने की आहट सुनाई पड़ी उसने मेरी ओर आँख जमा कर दृढ़ पर करुण स्वर में कहा, "तुम्हारे आसरे मैंने ज़िन्दगी काट दी अब वहाँ भी तुम्हारा ही रास्ता देखती रहूँगी"। उसकी आँखों में आँसू भर आया, मेरा भी हृदय काँप उठा—पर कमरे के बाहर निकलते ही प्रयाग का ध्यान आ गया, भूत सब मिथ्या है केवल वर्तमान सत्य है। जाकर बाग में बैठ कर 'विरह' पर एक कविता लिखने लगा। दूसरे रोज़ सुना पार्वती इस संसार में नहीं है। इसी स्थान पर इसी बरगद के पेड़ के नीचे यहीं गङ्गा के किनारे मेरे देखते देखते वह भस्म हो गई। संसार को त्याग गई, पर एक बूँद आँसू भी मेरी आँखों से न निकला। उसी रोज़ शाम को एक प्रीति भोज में सम्मिलित हुआ, .खूब हँसी खुशी हुई, ख़ूब चहलपहल रही, पर मेरा खुमार बहुत रोज़ तक न रह सका। एक रोज़ राजन के बड़े भाई ने मुझसे कहा, 'फागुन में बहिन का व्याह होगा सब तय हो गया' सुनते ही

मैं सन्नाटे में आ गया । जिसको इतने दिनों से अपनी समझता रहा वह दूसरे की—मैं एकाएक पूछ उठा, 'क्या राजन को यह मालूम है ?' उसने कहा, 'हाँ उसी ने तो पसन्द किया है ।' अब मुझे कुछ जानना शेष न रहा, केवल एक बार राजन से बात करने की अभिलाषा शेष रह गई । उसके लिये भी अधिक प्रतीक्षा की ज़रूरत न पड़ी । शाम को कालेज से आते ही राजन बैठक में मिली वह अकेली थी । मैंने पूछा 'क्यों राजन तुम्हारी शादी होने वाली है ?' उसने कुछ झेपते हुये कहा 'हाँ ।' मुझसे रहा न गया । मैं एकदम कह उठा इतने रोज़ से मुझे क्यों धोखे में डाले रही—उसने पूछा, 'किसने धोखे में डाल ।...

मैंने—तुमने

उसने कहा—झूठ—तुम क्या समझ रहे हो । छोटा सा विवाद हो गया, उसका अन्तिम वाक्य अब तक मेरे हृदय में खल रहा है—'ग़रीब और अमीर का सम्बन्ध क्या—तुम पर हम लोग दया करते थे, प्रेम नहीं, प्रेम समझ कर तुमने बड़ी भूल की । हमें ले जाकर तुम कहाँ रक्खोगे ? अपने गाँव में ! बर्तन मंजवाओगे और गोबर पथवाओगे ? क्यों—फ़ीस देने का भी तो ठिकाना नहीं कभी हम और कभी भइया दिया करते हैं, और हौसले इतने ऊँचे, अपनी शक्ति के भीतर ही काम करना चाहिये, बुरा न मानना तुम्हारे ही भले के लिये कह रही हूँ ।'

मेरे मुँह से केवल इतना ही निकला—'ओफ़' प्रेम का मूल्य रुपया—

उसने हँसते हुये कहा—'तो क्या प्रेम मुफ़्त बँटता है।'

मैं मकान से बाहर हो गया, मुझे संसार मिथ्या मालूम पड़ रहा था, मैं भूँसी चला गया। वहाँ पर तीन रोज़ तक एक खोह में बिना कुछ खाये पिये पड़ा रहा। क्या क्या विचार उस समय मेरे मस्तिष्क में चक्कर काट रहे थे कहना व्यर्थ है। तीसरे रोज़ मैं इस निश्चय पर आया कि संसार में रुपया कमा कर धनी बनूँगा और अन्त में उसे गंगा में डुबा दूँगा। पर रुपया इकट्ठा करूँगा। तीसरे रोज़ रात को प्रयाग वापिस आया। परीक्षा के बहुत थोड़े दिन थे मैं प्राण होम कर उसके पीछे पड़ गया। बी. ए. में प्रथम आया। मुझे आगे के लिये छात्रवृत्ति मिली और डिप्टा कलेक्टरी के लिये नामिनेशन हुआ मुझे रुपये की चिन्ता थी, मैंने डिप्टी कलेक्टरी स्वीकार कर ली। मेरे ऊँचे उद्येश्यों की यह बलि थी। मैंने खूब रुपया कमाया, निश्चय कर लिया था कि कभी विवाह न करूँगा, पर प्रतिज्ञा पर अटल न रह सका पर परमेश्वर को धन्यवाद है कि तुम मिलीं। गंगा को देख कर मुझे पार्वती का स्मरण आ जाता है।

हाँ किसका प्रेम सत्य था!

मानव चरित्र

मानव चरित्र

धनुका गोड़ का आज फैसला सुनाया जाने वाला है। कचहरी के सामने गांव वालों की भीड़ लगी है। उसकी स्त्री अपने छोटे बच्चे को लिये हुये एक टक जज को देख रही है। देवी देवताओं का सुमिरन कर रही है। जज ने धनुका का बयान ध्यान पूर्वक पढ़ा। उसने स्वयं अपना अपराध स्वीकार किया है। उस का बयान है कि गांव के रामदास कुरमी से उस की अदावत थी। उस रोज़ रामदास ने उसे गाली दी थी और मारने को धमकाया था। वह कहता था कि तेरे बाप ने मुझ से ऋण लिया है दे दे नहीं तो तुझे जेल में भेजवा दूँगा। धनुका ने रात्रि को सोते समय रामदास को मार दिया। दो तीन गवाह थे जिन्होंने उसे रात को रामदास के घर की ओर जाते देखा था। जज ने जिरह की। एक क्षण चुप रहे और फैसला लिखना आरम्भ कर दिया। कचहरी में सन्नाटा था। जज साहब कभी छत की ओर देखते और कभी धनुका की ओर। धनुका

ने जीवन और मृत्यु को इतना समीप कभी नहीं देखा था। उस की नजरों में निडरता थी और चेहरे पर सरलता। एका एक शान्ति भंग हुई। जज ने कहा 'खबरदार' पुलीस के सिपाही तन कर खड़े हो गये। जज ने आज्ञा सुनाई "अपराध साबित, फांसी की सजा।" चारों ओर कुहराम मच गया। पुलीस के सिपाहियों ने धनुका को पकड़ लिया। उसके हाथों में हथकड़ी डाल दी गई। आंखों से आंसू गिरने लगे—आँसुओं में विवशता थी। धनुका की स्त्री चिल्लाती हुई जज की ओर दौड़ी पर सिपाहियों ने बीच ही में रोक दिया। वह बे होश हो कर गिर पड़ी। ठीक इसी समय एकाएक भीड़ को चीरते हुए ठाकुर रामपाल सिंह आगे बढ़े। सिपाहियों ने उन्हें रोकने का प्रयत्न किया पर वे न रोक सके। जज के सामने पहुँच कर उन्हों ने कहा 'हजूर अन्याय की भी हद होती है। बिल्कुल निरपराध, निर्दोष को फाँसी की सजा देने से संसार हिल उठेगा। छोटे अपराध को बड़ा बनाइये कोई विशेष हानि नहीं। पर शून्य में किसी भी संख्या का गुना करिये नतीजा वही शून्य रहेगा। धनुका बिल्कुल निर्दोष है।

जज ने कड़े स्वर में पूछा—तुम कौन हो! क्या C. I. D. (खुफिया पुलीस) के हो?

राम—नहीं एक साधारण व्यक्ति हूँ।

जज—तो कैसे कहते हो कि असामी निर्दोष है।

राम—खूनी दूसरा है।

जज—असामी ने स्वयं अपना अपराध स्वीकार किया है।

राम—पुलीस के भय से। मरता क्या न करता।

जज—गवाह मौजूद हैं।

राम—झूठे हैं। पुलीस के बनाये हुए हैं।

जज—दूसरा असामी कहाँ है और तुम किस सबूत पर कहते हो कि यह असामी असली अपराधी नहीं है।

राम—हजूर दूसरा असामी यहां हाज़िर है मैं अभी उसे पेश करूँगा। मेरी केवल एक विनती है। आप धनुका को बोलवाइये उससे अब सच सच बयान लिखाने को कहिये। वह अब जीवन से निराश हो चुका है। सच सच बयान करेगा।

जज अभी नये थे। कुछ देर तक चुप रहे। सिपाहियों को धनुका को ले आने के लिये आज्ञा दी। रामपाल सिंह से बोले "देखो, मैंने तुम्हारे कहने पर असामी को फिर से बुलाया है। यदि तुम्हारी बात झूठी निकली तो समझ लो यह बाज़ार नहीं है कचहरी है।"

धनुका आ गया। उसके चेहरे पर मुर्दानगी छाई हुई थी।

जज ने कहा—तूने क्या उस बार झूठा बयान पुलीस के दबाव में आकर लिखाया था ठीक ठीक बोलो क्या बात है ?

धनुका चुप रहा। रामपाल ने कहा धन्नू परमेश्वर सब कुछ जानता है। बोलते क्यों नहीं ?

उसने एक ठंडी सांस ली। बोला "क्या कहूँ किसका विश्वास करूँ ? मैं कुछ नहीं जानता। पुलीस के सिपाही मुझे खेत से थाने पकड़ ले गये मुझे हवालात में बन्द कर दिया। मेरे ऊपर मार पड़ी। मुझ से कहा गया कि मैंने रामदास का खून किया है। मेरे इंकार करने पर फिर से मेरे ऊपर मार पड़ी। एक सिपाही ने कहा कि यदि मैं १००) दूँ तो बच सकता हूँ पर मेरे पास १०० पैसे भी न थे। मैं क्या देता ? इंस्पेक्टर साहब ने मुझे समझाया कि यदि मैं अपराध मान लूं तो छूट जाऊँगा। कम से कम सज़ा घट जावेगी। और कोई उपाय न होने पर मैंने वही किया जो कुछ उन्हों नें बताया। वही बयान लिखाया जो कुछ उन्हों ने सिखाया। मैं और कुछ नहीं जानता। रामदास से मेरा कुछ भी बैर विरोध न था और न उसने कभी मेरे ऊपर क़र्ज़ का दावा ही किया"।

२

ठाकुर रामपाल सिंह गाँव के एक प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं पिछले साल जो काल पड़ा था उसमें उन्होंने सब से अधिक काम किया

था। उन का स्वभाव बड़ा खरा है एक टप्पी बात कहते हैं किसी से दबना जानते नहीं। गाँव में सब कोई उन का बड़ा मान करते हैं। उन का अदब मानते हैं। दुख सुख में सब कोई उन के यहाँ जाता है। वे यथा शक्ति सब की सहायता करते हैं। धन नहीं है पर बात के धनी हैं। अन्याय का सहन करना उनके लिये असह्य है। उनको कचहरी में जाते देख सब चकित हो गये। ठाकुर रामपाल सिंह ने कहना आरम्भ किया :—

"हजूर मेरा नाम रामपाल सिंह है। साकिन रामगढ़ का हूँ पुरखों की थोड़ी सी ज़मीदारी है जिस में खेती का काम करता हूँ। पुरखों के कारण गाँव में थोड़ा बहुत मान सम्मान है। सब इज्ज़त की नज़र से देखते हैं। मैं खेत में धान कटा रहा था। मज़दूर काम कर रहे थे। रामदास की लड़की भी धान काटने आई थी। रामदास मेरा असामी है। उससे मेरा बहुत मेल रहता था। जब कभी उसको रुपयों की ज़रूरत पड़ती थी मेरे यहाँ से ले जाता था। पार साल काल में जब वह बिल्कुल असहाय हो गया था मैंने उसकी और उसके परिवार की रक्षा की थी। खेत की मेड़ पर बैठा मैं कुछ गुनगुना रहा था। रामदास की लड़की तिजिया ने मेरी ओर देखा। मेरी भी नज़र उसकी नज़र

से मिल गई। उसने मुस्कुरा कर अपना सर नीचा कर लिया। और गर्दन टेढ़ी कर धान काटने लगी। मेरा हृदय काँप उठा विशेष ज्ञान न रहा मजदूरी देते समय मैंने उससे कुछ बातें कीं। कुछ हँसते कुछ सकुचाते, दोनों कन्धों को ऊपर सिकोड़, मुँह मोड़, दाँत से धोती का नोक काटते हुये उसने उत्तर दिया।

करीब आधी रात को मैं उठा। चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था। मैं दबे पाँव रामदास के घर को ओर चल पड़ा। हाँथ में एक कुल्हाड़ी थी। हृदय सन्न सन्न कर रहा था। पग पग पर रुकता था, दम दम पर सचेत होता था पर आगे खिचा चला जाता था। सावन भादों की अँधेरी रात में पानी बरसते हुये में मैं निर्भय होकर विचरता था पर उस रोज आधी मील तक जाना मेरे लिये कठिन हो गया। रामदास के घर के समीप पहुँचा, धीरे से पीछे की ओर किवाड़े पर धक्का दिया वह खुल गया। भीतर से बन्द नहीं था। काँपते हुये हृदय से मैं भीतर घुस गया। केवाड़ा भिड़का दिया। मेरे जाने के थोड़ी ही देर बाद रामदास अपने बैल चराने के लिये उठा। उसको कुछ आहट मिली वह आकर उसी कोठरी में खड़ा हो गया जिसमें तिजिया और मैं था। मुझे देखते ही वह अचम्भे में आ गया। काँपती हुई

आवाज़ में बोला 'ठाकुर तुम। जब समुद्र ने ही अपनी मर्याद तोड़ दी तो अब कौन रक्षा करे।' मैं नीचे को सर किये हुये खड़ा था। मेरा मस्तिष्क चक्कर कर रहा था। मेरी मान, मर्य्यादा, इज्ज़त सब नष्ट होती मालूम पड़ी। मैं सब कुछ सह सकता था पर इज्ज़त पर पानी फिरते हुये देखना मेरे लिये असह्य था। मैं तिलमिला उठा। मुझे कुछ न सूझा। हाँथ में कुल्हाड़ी थी। एकाएक मार बैठा घाव भारी न था पर सिर में चोट आई। अकाल का मारा था चोट सह न सका। उसकी आँखें निकल आईं। तिजिया से यह कह कर कि खबरदार यदि यह चर्चा किसी से की तो प्राण ले लूँगा। घबड़ाना नहीं रुपये से माला माल कर दूँगा। मैं बाहर निकला। कुछ देर बाद वह चोर चोर चिल्लाने लगी मैं तालाब पर आया कुल्हाड़ी को वहीं फेंक खूब मुंह हाँथ धोया और आकर चारपाई पर लेट गया। नींद नहीं आई। एक घण्टे के बाद गाँव के आदमी मेरे पास आये। रामदास के खून की बात बताई। मैंने उसी क्षण एक आदमी थाने में रपट लिखाने को भेजा। दूसरे रोज थानेदार साहब आये। सब का बयान लिया। मुझसे कुछ न पूछा गया। मैं थानेदार साहब के साथ था। सब ने थानेदार को बिदाई दी। धनुका कुछ न दे सका। उसका चालान हुआ और फाँसी की सज़ा हुई। मैंने एक निरपराध

का खून किया। मेरा हृदय अनुताप से जल रहा है। मेरा स्वभाव है कि मैं अन्याय को नहीं सह सकता मेरे ही कारण एक दूसरे निर्दोष प्राणी का जीवन जा रहा है। वह अपने मन में क्या सोचता होगा। उसके घर के प्राणी दाना दाना के लिये तड़प कर मर जायंगे। असल अपराधी मैं हूँ मुझे सजा होनी चाहिये। गवाह तिजिया है।

जज ने पूछा—जब इतना ज्ञान बना हुआ है तब यह अत्याचार क्यों किया ?

रालपाल ने गम्भीर स्वर में कहा—हजूर परिस्थिति मनुष्य से न मालूम क्या क्या करा लेती है। पर यदि परिस्थिति ने मुझ से अत्याचार करा लिया है तो मैं उसका फल भुगतने को तैयार हूँ।

जज—एक ओर इतना नीच और दूसरी ओर इतना ऊँचा।

रामपाल—हजूर इस संसार में अन्धकार और प्रकाश दोनो हैं। किसी व्यक्ति को उसके केवल एक काम से परखना अन्याय करना है मानव-चरित्र एक अजीब पहेली है।

जज ने उदास मन से अपना फैसला लिखना आरम्भ किया।

कटु अनुभव

कटु अनुभव

पिता के जीवन काल में वीरेन्द्र ने विपत्ति को कुछ समझा ही नहीं। उसकी उसके ऊपर छाया तक नहीं पड़ पाती थी। अपने बाप का एकलौता यत्न और प्यार से पाला पोषा गया था। स्वभाव से उद्दण्ड था और कार्य्य करने में निर्भीक अपने साथियों में साहस के लिये प्रसिद्ध था। जब वह १५ वर्ष का था उसकी माता का देहान्त हो गया। उसके घर में और कोई न था। आलीशान मकान सूना पड़ा था। उसके पिता ने उसकी शादी करनी चाही पर उसने साफ़ इन्कार कर दिया। दूसरी बार उससे फिर कहने का किसी को साहस न हुआ। पर सूने घर को आबाद करना आवश्यक था। उजड़ी हुई गृहस्थी को बसाने के लिये ज़मींदार साहब को ही आगे बढ़ना पड़ा। वीरेन्द्र, उसको सह न सका। पिता का विरोध किया। पर उसकी नई माता जी आ गईं। उसके पिता का विवाह हो गया।

वीरेन्द्र इसी साल प्रयाग कालेज में पढ़ने चला गया। यहाँ उसकी जान पहचान नवीन चन्द्र से हो गई। वीरेन्द्र नवीन को प्यार करता था, नवीन वीरेन्द्र से अनुराग। दोनों साथ साथ रहते और साथ ही साथ काम करते थे। वीरेन्द्र अन्याय का प्रबल विरोधी था। उसके कार्य्य करने के ढंग भी निराले थे। वह फलाफल पर कभी विचार न करता था। उसका विरोध बहुत तीव्र होता था। वह सब से बड़ा विरोधक अपना ही था। उसने कभी समाज और संसार की परवाह नहीं की। कठिनाइयों को रौंद कर और आपत्तियों को ठुकरा कर आगे बढ़ना ही उसके जीवन का लक्ष्य था। कालेज के विद्यार्थी उसका आदर करते थे। वह उनका नेता था।

वीरेन्द्र की परीक्षा पास थी। इतने में घर से उसे पत्र मिला। उसके पिता बहुत बीमार थे। चार साल से वह घर नहीं गया था। पिता का प्यारा इकलौता पुत्र सिद्धान्त के लिये रूठा हुआ था। जमीदार साहब ने डाटा फटकारा, अनुनय विनय की पर कुछ भी फल न हुआ। वह तनिक भी विचलित न हुआ। पर आज के पत्र ने उसे डिगा दिया। जमीदार साहब मृत्यु शय्या पर पड़े हैं। पुत्र के व्यवहार ने उनको भीतर ही भीतर जर्जरित कर दिया था। बचने की बहुत कम आशा थी। उन्होंने बहुत अनुनय के साथ लिखा था:—

प्यारे वीरू,

मैं कैसा भी क्यों न होऊँ हूँ तुम्हारा ही पिता। मुझे दुःख है कि चाहने पर भी तुम इस सम्बन्ध को मिटा नहीं सकते। पिता पुत्र का सम्बन्ध स्वर्गीय है स्वाभाविक है। तुम्हारा कहना न मानने का फल भुगत रहा हूँ। सामने २० साल की पूर्ण युवती खड़ी है जिसने संसार का अभी कुछ भी नहीं देखा। उसके जीवन को नष्ट करने का भार मेरे ऊपर है। मेरा हृदय अनुताप से जला जा रहा है। स्वार्थ मनुष्य को विवश बना देता है पर अन्धा नहीं। वीरू, मैंने भूल की है मुझे क्षमा करो। पिता होकर मैं तुमसे क्षमा की भिक्षा माँगता हूँ। मैं तुमसे न्याय नहीं दया चाहता हूँ। घड़ी दो घड़ी का मेहमान और हूँ। क्या तुम अपने मरते हुये पिता के मुँह में एक बूँद जल न डालोगे? क्या तुम्हारे हृदय में कर्त्तव्य को छोड़ कर दया और ममता के लिये तनिक भी स्थान नहीं? मैं कर्तव्य के ही नाम पर तुमको पुकारता हूँ। बीमार पिता की सेवा करना पुत्र का कर्तव्य है। बीरू तुम आवो या न आवो पर तुम हो मेरे ही। मेरे बाद तुम्हीं मेरी समस्त सम्पत्ति के अधिकारी हो। विचारी चम्पा का कोई भी दोष नहीं है। वह अज्ञान है। क्या तुम अब भी न आवोगे?

तुम्हारा भुलाया हुआ पिता

राय मोहन

पत्र पढ़ते ही वीरेन्द्र घर के लिये चल पड़ा। अनायास उसके आँखों से आँसू निकलने लगे। पर उसके पहुँचने के पहले ही दीपक बुझ चुका था।

× × ×

जमींदार साहब को मरे हुये क़रीब एक साल हो गये थे। इस साल वीरेन्द्र परीक्षा में न बैठ सका। घर का प्रबन्ध करने के लिये उसे घर ही पर रहना पड़ता था। वह अपनी मां की भरसक सेवा करता था। वह उसके दुःख से दुःखी था। कभी कभी चम्पा वीरेन्द्र से अपनी ओर देखने को कहती थी। वह हँस पड़ता था।

कहताः—माँ तुम मेरी माँ हो पर अवस्था, हम लोगों की एक ही है। यह अन्याय मुझ से नहीं देखा जा सकता कि मैं आनन्द मनाऊँ, मोहन भोग और हलुआ खाऊँ और तुम सन्यासिनी बन कर सूखी रोटी खाकर रहो।

चम्पा कहतीः—भय्या किसी का कर्म ही फूट जाय तो क्या उपाय। तुम भी अपना जीवन मेरे साथ नष्ट न करो।

वीरेन्द्र—कर्म वर्म तो मैं जानता नहीं, या तो तुम्हें भी सुखी बनाऊंगा या मैं भी सन्यास ले लूंगा।

चम्पा की आँखें चमकने लगतीं, वीरेन्द्र डर जाता, कुछ सोचता हुआ बाहर चला जाता।

वीरेन्द्र ने अपने एक मित्र को विधवा-विवाह करने के लिये राज़ी कर लिया, वह उसकी तय्यारियाँ करने लगा, गाँव वालों ने विरोध किया। उसने उन्हें फटकार दिया, वह चम्पा से इस विषय में बातें करने ही वाला था, उसे विश्वास था कि वह उसे राज़ी कर लेगा, पर गाँव की स्त्रियाँ और बुड्ढे हितचिन्तक चम्पा के पास पहले ही पहुँच गये। उन्होंने उसे बतलाया कि वीरेन्द्र चम्पा को अपने रास्ते से अलग करना चाहता है। वह चाहता है कि चम्पा चली जाय जिससे वह इतनी बड़ी ज़मीदारी को अकेले भोग सके, उन्होंने यह भी बतलाया कि शादी हो जाने से चम्पा जाति से निकाल दी जावेगी, कोई न तो उसके हाथ का छुआ खायगा न पानी पियेगा और न कोई उसे अपने घर में आने देगा—

भगवान शत्रु को भी सौत का लड़का न दे—बाप को घुला घुला कर मारा अब माँ पर भी हाथ साफ़ करना चाहता है। चम्पा क्रोध के मारे काँपने लगी।

उसने कहाः—अच्छा, इसी लिये मेरा इतना आदर दुलार किया जाता था। मैं नहीं जानती थी कि दूध में विष दिया जा रहा है।

उसने प्रतिज्ञा की कि उसके जीते जी कोई भी उसका धर्म नष्ट नहीं कर सकता। बुद्धिमान पण्डित अँधेरे में शराब पी

लेता है पर प्रकाश में उसकी ओर देखता भी नहीं। दुलार का अर्थ गाँव वालों ने विचित्र रूप से लगाया, तमाम गाँव में बात फैल गई कि वीरेन्द्र का व्यवहार उसकी माँ की ओर से अच्छा न था। वह जब उसको उस प्रकार कलंकित न कर सका तब यह दूसरा ढंग निकाला है।

इस ख़बर को सुनते ही वीरेन्द्र क्रोध के मारे काँपने लगा। पर उसने शान्ति से काम लेना उचित समझा। प्रत्येक सुधारक पापी समझे जाते हैं। वह जाकर अपने कमरे में पढ़ने लगा। कमरे के अन्दर आते ही उसकी माँ उसके पास पहुँची। क्रोध से उसकी आँखें जल रही थीं। पर वीरेन्द्र की ओर देखते ही रो पड़ी। बोली:—'क्यों बीरू बाप को मार कर अब मेरे ऊपर हाथ साफ़ करना चाहते हो। क्या मेरे लिये दो रोटियाँ भी देना मुश्किल हो गया।'

वीरेन्द्र सन्नाटे में आ गया, उसने धीरे से कहा:—'माँ जी आप नहीं जानतीं आप क्या कह रही हैं तनिक होश में आइये।'

चम्पा—मैं होश में हूँ पर मैं यह जानना चाहती हूँ कि तुम मुझे क्यों निकालना चाहते हो।

वीरेन्द्र—कौन आप को निकालना चाहता है ?

चम्पा—तुम।

वीरेन्द्र—मैं ?

चम्पा—हाँ तुम—यह तय्यारियाँ काहे की हो रही हैं ?

वीरेन्द्र—आपके विवाह की।

चम्पा—मेरे विवाह की, क्या तुम्हीं को ताना मारना है, वीरू ?

वीरेन्द्र—माँ, मैं आपके ऊपर ताना नहीं मार सकता। मैं सच कहता हूँ।

चम्पा—हिन्दू लड़कियों का विवाह एक ही बार होता है।

वीरेन्द्र—यह झूठ है।

चम्पा—तमाम दुनियाँ यही कहती है।

वीरेन्द्र—दुनियाँ झूठी है।

चम्पा—तुमने मुझसे एक बार भी नहीं पूछा।

वीरेन्द्र—मैं आप से पूछने ही वाला था पर इसकी कोई खास ज़रूरत न थी। मैं जानता हूँ कि मैं ठीक कर रहा हूँ, बस इतना ही मेरे लिये काफ़ी था।

चम्पा—तुम ज़मींदारी चाहते हो वह तो तुम्हारी ही है, मुझे नर्क में क्यों डालते हो ?

वीरेन्द्र की आँखें क्रोध से अंगारे की भांति जलने लगीं। उसने कड़क कर कहा, आपको मालूम नहीं मैंने अपनी पूरी ज़मींदारी आप दोनों आदमियों के नाम लिख दी है, मैं इसमें से एक पैसा भी न लूँगा। आप गाँव के मूर्ख लोगों के बहकाने में न आइये।

चम्पा—नीच तुम पहले अकेले मेरी इज्ज़त लेना चाहते थे पर अब अपने दो चार दोस्तों के साथ मिल कर मुझे बे इज्ज़त करना चाहते हो। याद रखना—तुम ऐसा न कर सकोगे। स्त्री अपनी आन के लिये अपनी जान पर खेल जाती है।

वीरेन्द्र क्रोध के मारे काँपने लगा, अधिक सुन सकने की ताक़त उसमें अब न थी, वह चिल्ला उठा; 'बस, चुप। मैं इस ज़मीदारी को ठोकर मारता हूँ, मैं आज ही यहाँ से चला जाऊँगा, मैंने इसको अपना कर्तव्य समझा था।'

२

वीरेन्द्र को इससे काफ़ी धक्का लगा, पर वह घबड़ाया नहीं, विरोध उसका जीवन था। कठिनाइयों के प्रबल चट्टान उसके भीषण प्रवाह को मोड़ सकते थे पर रोकने की सामर्थ्य उनमें न थी।

प्रयाग आकर उसने अध्ययन आरम्भ कर दिया। वह नवीन के साथ रहता था, नवीन उसका बचपन का साथी था। वीरेन्द्र की उद्दण्डता पर केवल नवीन ही शासन कर सकता था, नवीन ने वीरेन्द्र को समझाया कि संसार के साथ चलना होता है।

वीरेन्द्र ने हँस कर कहा:—नवीन, कुछ आदमी संसार के साथ घसिटने के लिये पैदा होते हैं और कुछ संसार को अपने

साथ ले चलने के लिये पैदा होते हैं। मैं घसिटने के लिये पैदा नहीं हुआ हूँ।

नवीन—पर इससे लाभ क्या होगा? यदि तुम संसार के साथ न रहोगे तो उसका कुछ भी काम न कर सकोगे।

वीरेन्द्र की त्योरियाँ चढ़ गईं। उसने कड़क कर कहा:—तर्क शिरोमणि महाराज, मैं अन्याय को नहीं सह सकता।

नवीन—पर न्याय और अन्याय का निर्णय कौन करेगा। मान लो जिसको तुम अन्याय समझते हो उसी को दूसरा न्याय समझता हो।

वीरेन्द्र—जिसको मैं अपने लिये सत्य समझता हूँ वही मेरे लिये सत्य है। दुनिया के लिये क्या सत्य है मैं इसकी चिन्ता नहीं करता। मुझे चिन्ता केवल यह है कि जो कुछ मैं सोचता हूँ उसमें स्वार्थ तो नहीं है। देश समाज से बड़ा है। मैं अपने समस्त कार्य्य उसकी कसौटी पर कसता हूँ।

नवीन चुप हो गया। वह जानता था कि वीरेन्द्र के साथ तर्क करना व्यर्थ है। इतने में उसके सहायक बाबू महादेव प्रसाद आ गये। वीरेन्द्र इन पर बड़ा विश्वास करता था। उसके सार्वजनिक जीवन के ये दाहिने हाथ थे। सुधारक से वीरेन्द्र सेवक हो गया था। उसने एक भारत सेवक दल बना रखा था।

वीरेन्द्र का विचार अपने समस्त जीवन को इसी में अर्पित कर देने का था। उसके दल का उद्देश्य गाँवों में जाकर कार्य्य करने का था। वीरेन्द्र काम करना जानता था, त्याग करना जानता था पर व्यवहार-चतुर न था। जब उसके पास हज़ारों रुपये थे, वह बड़ा भारी ज़मींदार था, संघ को रुपये के लिये किसी का मुँह न ताकना पड़ा। उसने कभी हिसाब न किया। सब सदस्य उसका मान करते थे। वह सभापति था पर अब उसके पास रुपये न थे उसको स्वयं रुपयों की आवश्यकता थी। वह अपना आवश्यक ख़र्च संघ से ले लेता। देते समय न कभी उसने सोचा और लेते समय न कभी हिचका। पर संसार को उसी की आवश्यकता है जो दे सके। देने वाले को सब चाहते हैं लेने वाले को कोई नहीं। महादेव प्रसाद ने सदस्यों को सुझाया कि वीरेन्द्र धीरे धीरे संघ को अपनी निजी सम्पत्ति बना लेना चाहता है। और यदि आरम्भ में ही दवा न की गई तो रोग असाध्य हो जावेगा। सामने वीरेन्द्र का विरोध करने का साहस किसी को न था। अतएव सदस्यों ने महादेव प्रसाद को नियुक्त किया कि वे वीरेन्द्र से कहें कि वह संघ से अलग हो जावे।

महादेव प्रसाद को देखते ही वीरेन्द्र ने पूछा:—'क्यों महादेव प्रसाद आप कल रात्रि पाठशाला में पढ़ाने क्यों नहीं आये?'

महादेव प्रसाद ने नीचे को सिर करके कहाः—'संघ ने निश्चय किया है कि पाठशाला बन्द कर दिया जावे। वह उसका बोझ नहीं उठा सकता।

वीरेन्द्र को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने पूछाः 'किसने निश्चय किया है ?

महादेव—'संघ की कार्य्य कारिणी समिति ने।'

वीरेन्द्र—कब ?

महादेव—परसों की बैठक में।

वीरेन्द्र—खूब—और मुझे पता नहीं। अभी तो संघ के पास काफ़ी रुपया है।

महादेव—आप के बारे में समिति को विचार करना था अतएव आप को सूचना नहीं दी गई।

वीरेन्द्र—मेरे बारे में ?

महादेव—हाँ आप के बारे में।

वीरेन्द्र क्रोध से काँपने लगा। पर अपने को सँभाल कर बोलाः—अच्छा बतलाइये क्या विचार करना था ?

महादेव—संघ अभी इस योग्य नहीं है कि उससे किसी कार्य्य कर्ता को मासिक ख़र्च दिया जा सके अतएव उसने निश्चय किया है कि यदि आप उचित समझें तो संघ का सभापति कुछ

रोज के लिये कोई दूसरा बना दिया जावे। और आप अध्ययन करके परीक्षा भी पास कर लेवें।

वीरेन्द्र ने अपने ओठों को काटते हुये कहाः—'खूब'

महादेव प्रसाद ने नीचे को सिर करके कहाः—रात्रि-पाठशाला और ग्राम औषधालय का भार आप के ऊपर था अतएव समिति का विचार है कि आप के ऊपर इस समय भार रखना उचित नहीं। अतएव ये भी बन्द कर दिये जावें।

वीरेन्द्र ने पूछाः—सभापति कौन बनाया गया है?

महादेव ने कुछ सोचते हुये कहाः—'उन लोगों का कहना मेरे लिये है पर बिना आप की अनुमति के मैं कैसे हो सकता हूँ?

वीरेन्द्र अब आगे न सुन सका उसने क्रोध से काँपते हुये स्वर में कहाः—यह सब इसके लिये। पर जाइये अपने सदस्यों से कह दीजिये कि मैं हटने के लिये तय्यार नहीं हूँ। बैंक में रुपया मेरे नाम जमा है।

महादेव—उन लोगों को पहिले ही से यह सन्देह था कि आप संघ को अपनाना चाहते हैं।

वीरेन्द्र ने पूछा—उन लोगों का यह विचार है या आप का? आप तो मुझे जानते हैं!

महादेव प्रसाद ने अपने बाल खुजलाते हुये कहाः—'पर मैं भी मनुष्य हूँ।'

वीरेन्द्र आगे न सुन सका। उसने डाट कर कहा:—बस महादेव चुप रहो, मैं सब कुछ सह सकता हूँ पर पाखण्ड मुझसे नहीं सहा जाता। यह लो मेरा इस्तीफ़ा, पर तुम लोगों को समझ लेना चाहिये था कि जिसने हीरे की माला उतार कर फेंक दी है वह काँच की माला न पहनेगा।

३

निराशा क्रान्ति की जननी है। जब मनुष्य वर्तमान से निराश हो जाता है वह उसको नष्ट कर देना चाहता है। वीरेन्द्र भी प्रचण्ड क्रान्तिवादी हो गया। उसके पास आठ दस साथी थे उनको लेकर उसने एक दल का संगठन किया। साहस और त्याग की उसमें कमी न थी। समय ने उसको परिश्रमी भी बना दिया। उसकी हार्दिक इच्छा थी कि नवीन भी उसके दल में सम्मिलित हो जाय पर किसी से कुछ करने के लिये प्रार्थना करना उसके स्वभाव के विरुद्ध था। नवीन वकील हो गया था। वीरेन्द्र ने एक रोज़ उससे पूछा:—

'क्यों, देश के प्रति तुम्हारा कुछ भी कर्तव्य नहीं है ?' नवीन ने संक्षेप में उत्तर दिया। 'देश की सेवा करने के लिये मैं तैयार हूँ पर देश की वन्दना करना देश का सत्यानाश करना है।'

वीरेन्द्र—देश की पूजा करना भी तो देश की सेवा करना है। तुम तर्क के द्वारा देश को जनता के सामने प्रत्यक्ष नहीं कर सकते पर पूजा के समय वे देश को अपने सामने प्रत्यक्ष रूप से देखते हैं। पूजा का तात्पर्य्य है अप्रत्यक्ष को प्रत्यक्ष करना।

नवीन—पूजा करने के लिये मैं मना नहीं करता पर तुम तो घृणा का उपदेश देते हो। तुम पूजा करो पर विद्वेष न करो।

वीरेन्द्र—विद्वेष भी पूजा का अङ्ग है। नवीन, विरोध के लिये घृणा करना आवश्यक है। जो हमारे ऊपर अत्याचार करते हैं; जो हमारे देश को कुचल डालने के लिये तैयार हैं उनसे घृणा करना ही हमारा धर्म है। मैं तर्क और बुद्धि को नहीं जानता पर हृदय भी कोई वस्तु है। यह क्या तुम बिल्कुल ही नहीं मानते।

नवीन—मैं तुमसे सच कहता हूँ वीरेन्द्र, देश को जब तुम देवता कह कर देश के लोगों की बुद्धि को भ्रान्ति में डालते हो उस समय मेरा हृदय बड़ा व्याकुल होता है। देश के कल्याण के बहाने मैं देश का अ-कल्याण नहीं कर सकता।

वीरेन्द्र क्रोध से जल उठा। उसने गर्ज कर कहा—मैं बाल की खाल उड़ाना नहीं चाहता, मैं मनुष्य हूँ, मुझे लोभ है,

मैं देश के लिये लोभ करूँगा। मुझे क्रोध है, मैं देश के लिये क्रोध करूँगा। मैं इतने दिन के अपमान का बदला लूँगा। ब्याज सहित ऋण चुका लूँगा। मुझे मोह है, मैं देश के लिये मोह करूँगा। मैं देश को ऐसे प्रत्यक्ष रूप में देखना चाहता हूँ जिसको मैं माँ कह सकू, देवी कह सकू, दुर्गा कह सकूँ। जिसके सामने बलिदान के पशु को बलि देकर रक्तारक्त कर दूँ। जिसके सामने मैं दुःख पड़ने पर रो सकूँ और जिसके सामने मैं खुशी से पागल हो कर नाच सकूँ। नवीन, मैं मनुष्य हूँ देवता नहीं, आज धर्म कर्म विचार विवेक का दिन नहीं है। आज हमें निर्विचार, निर्विकार हो कर निष्ठुर होना पड़ेगा। आज धिक्कार है उस धर्म को जो 'बसुधैव कुटुम्बकम्' का उपदेश देता है, धिक्कार है उस धर्म को जो प्रसन्न चित्त हो कर सर्व-नाश करना नहीं जानता। नवीन, सर्वनाश में ही शान्ति है और सर्वनाश में ही समृद्धि है।

नवीन—पर इससे कुछ लाभ न होगा। वीरेन्द्र संहार करना आसान है पर निर्माण करना कठिन। तुम कुछ रचना-त्मक काम करो। देश के सामने आदर्श रखो, लोगों को देश की पूजा करना नहीं देश की सेवा करना सिखलाओ।

वीरेन्द्र—मैं भारी से भारी आदर्श देश के सामने रखना चाहता हूँ। मैं वर्तमान का नाश कर भविष्य का बीज बोना

चाहता हूँ। मुझे वर्तमान पर विश्वास नहीं, मैं इससे ऊब गया हूँ। मुझे ऐसा मालूम पड़ता है समस्त वायुमण्डल विषाक्त हो गया है। मेरा दम घुटा जा रहा है, मैं एक क्षण के लिये भी चुपचाप नहीं बैठ सकता। भाई मेरा दल······

नवीन—पर दूसरे का प्राण लेने का तुम्हें क्या हक़ है ? यह तो पाप है।

वीरेन्द्र—मैं पाप पुण्य नहीं मानता। मैं नहीं जानता कि कौन सा कार्य्य पाप है और कौन सा पुण्य। मैं केवल इतना जानता हूँ कि मैं कोई भी कार्य्य अपने स्वार्थ के लिये नहीं करता। भाई, यदि तुम्हें हक़ है कि ग़रीब की अन्तिम रोटी भी छिना लो और उसके भूखों मरने पर ताण्डव नृत्य करो तो मुझे भी हक़ है कि मैं तुमको लप्पड़ मार कर तुम्हारे पास से एक रोटी छीन लूँ और उसको भूख से तड़प तड़प कर मरते हुये असहाय को दे दू। यही मेरा धर्म है यही मेरा कर्म है।

नवीन ने मुस्कुराते हुये कहा:—अच्छी बात है, तुम अपना काम करो और मैं अपना काम करता हूँ।

वीरेन्द्र ने बज्र की तरह गर्ज कर कहा—'अच्छी बात है' और एक ओर को चल पड़ा।

× × ×

वीरेन्द्र को रुपये की आवश्यकता थी। बहुत प्रयत्न करने पर भी उसको रुपया न मिला। साथियों को इकट्ठा किया। समस्या पर विचार होने लगा। वीरेन्द्र ने डाक गाड़ी लूटने का निश्चय किया। उसके साथी ने बतलाया कि परसों कलकत्ते का ख़जाना जायगा। स्कीम बन गई, रामदत्त चलती गाड़ी में चढ़ने में एकता था। उस पर गाड़ी खड़ी करने का भार रखा गया। पर उसने इन्कार कर दिया। वीरेन्द्र गुस्से से लाल पड़ गया। उसने पिस्तौल निकाल लिया। रामदत्त ने सर नीचे कर के कहा:—'सभापति बनना आसान है। पर चलती गाड़ी को लूटना मुश्किल' वीरेन्द्र ने एक आह ली......'तुम भी न समझ सके—अच्छा जावो परसों तुम लोगों को रुपया मिल जावेगा पर अब वीरेन्द्र को न पा सकोगे।'

× × ×

आधी रात का समय था। गाड़ी से कूदने पर वीरेन्द्र के सर में गहरी चोट लगी थी। वह सीधे नवीन के घर पर पहुँचा। नवीन घर पर न था, वह भीतर चला गया। बिस्तर पर लेट गया। कला घर पर थी। उसने देखा वीरेन्द्र धीरे धीरे मूर्छित हो रहा है, उसके सर से ख़ून निकल रहा है, वह वीरेन्द्र को पूज्य दृष्टि से देखती थी, पानी ले आकर उसने वीरेन्द्र के घाव को धोया। अपने रूमाल से बाँध दिया। पूछा:—'लाला कहाँ से आये?

वीरेन्द्र हँस पड़ा, 'रुपया लूट कर आ रहा हूँ भाभी बड़ी भूख लगी है, कुछ खाने को दो।'

कला ने जल्दी दूध गर्म किया। वह लेकर वीरेन्द्र के पासचली इतने में नवीन आ गया। पूछा:—दूध कहाँ ले जा रही हो।

कला ने कहा—वीरेन्द्र बाबू आये हैं।

नवीन—कब,—कहाँ हैं।

कला—भीतर शयन गृह में ?

नवीन—शयन गृह में ?

कला—हाँ, उनके सर में चोट लगी है।

नवीन—ले आवो मैं दूध लेकर जाता हूँ। तुम्हारा अकेले उनके पास जाना ठीक नहीं है।

कला—क्यों ?

नवीन—मैं सब का विश्वास कर सकता हूँ, पर वीरेन्द्र का नहीं। उसके लिये पाप पुण्य कुछ नहीं है।

वीरेन्द्र का कमरा पास ही था। वह नवीन की बात सुन रहा था। चौंक पड़ा, नवीन को पुकार कर कहा—'नवीन, वीरेन्द्र ख़ूनी है, पापी है—पर विश्वास घाती नहीं।'

आज पहिले पहल उसकी आवाज़ में करुणा थी।

इसके बाद वीरेन्द्र को कभी किसी ने नहीं देखा।

भ्रम

१
पुरुष

मेरे पिता दिल्ली में नौकर थे। वे और मेरी माँ यही दो प्राणी इस छोटे से परिवार में थे। आमदनी अधिक न होने पर भी दो आदमियों के लिये पर्याप्त थी। मेरे घर के पास ही एक बाँचनालय था उसमें हिन्दी के बहुत से पत्र आते थे। मैं रोज़ इसमें घंटे आध घंटे के लिये जाता था। हर एक पुस्तक में स्त्रियों के ऊपर किये गये रोमाञ्चकारी अत्याचारों का वर्णन पाता था। समाचार पत्रों में भी वही कथा रहती और आपस में भी वही वार्ता। मैं स्त्री जाति का पक्षपाती हो गया। उनके साथ मेरी पूर्ण सहानुभूति हो गई। मैंने दृढ़ निश्चय किया कि किसी पढ़ी लिखी बालिका के साथ शादी कर अपने घर को स्वर्ग बनाऊँगा। मैंने ऐसे स्वर्ग बने हुये घर पुस्तकों में बहुत से देखे थे। पर उस समय यह न समझ पाता था कि वे स्वर्ग-सदन

केवल कवि की कल्पना हैं। आज कल बहुत से नवयुवक मेरे ही समान भूल करते हैं। वे उपन्यास में पढ़ी लिखी बालिका का सुन्दर सरल जीवन, सादी रहन सहन, और उच्च चिन्तन देखते हैं। प्रचलित शृंगार की वस्तुओं की ओर जो उनका स्वाभाविक आकर्षण होता है और उसके लिये जो उनका अधिकार रुपी संग्राम होता है उसे लेखक सफलता पूर्वक हड़प कर जाता है। उसी उपन्यास में वे रामू की माई का भी चरित्र पाते हैं, धुल धुल, गन्दा जीवन, दिन रात्रि नोन तेल लड़की के प्रश्न को ही हल करती रहना। न सरलता और न सरसता। लेखक की कृपा से वे नित्य प्रति खाते समय अपने 'उनसे' गहने के लिये लड़ती और बुरा हठ करती हैं। सुन्दर स्वर्ग समान घर को उजाड़ देती हैं और यदि वे 'उन' महाशय पढ़े लिखे हुये तो पूरा जीवन नर्क बना देती हैं। बेचारे अनुभव हीन युवक लेखक की नायिका का पक्का प्रेमी हो जाता है। वह नहीं जानता कि इस नायिका के 'आप' और 'अधिकार' शब्द कम तीखे नहीं होते।

मैं भी ऐसे नवयुवकों में एक था। जब मैं दसवें दर्जे में पहुँचा पिता जी ने मेरी शादी तय की। बालिका सुन्दरी थी, भोली थी। मेरी देखी हुई थी पर पढ़ी लिखी न थी। मैंने शादी से इन्कार कर दिया। पिता जी नाराज़ हुए। मैं चुप रहा। कुछ काल बाद मेरे पिता जी की मृत्यु हो गई। मैं अपने

स्वयं निर्मित पुस्तक संसार से बाहर आया। एक बिल्कुल विपरीत संसार पाया। मैं नौकरी की तलाश में निकला। बड़ी मुश्किल से एक दफ्तर में ४०) मासिक वेतन पर ठिकाना लगा। गृहस्थी का समस्त कार्य्य मेरी माँ के ऊपर था। उन्हें बड़ा कष्ट होता था। मुझ से कई बार विवाह करने के लिये कहा पर मैंने टाल मटोल कर दिया। अब भी अपने दीन हीन घर को स्वर्ग-सदन बनाने की मेरी लालसा दूर न हुई थी। मेरे कार्यालय में मेरे एक मित्र थे उनके कोई सम्बन्धी हरिद्वार में रहते थे। उन की लड़की कन्या महा-विद्यालय में पढ़ती थी। उसके लिये बर की आवश्यकता थी। वे महाशय जाति पाँति के कट्टर पक्षपाती थे। मेरे मित्र ने मेरे लिये लिखा उन्होंने जाँच की और स्वीकृत दे दी, मुझे भी मंजूर था। शादी हो गई। शादी में बड़ी धूम धाम नहीं हुई। मैंने अपने स्वर्ग-सदन को बहुत निकट पाया। उपन्यासों में वर्णित सोहाग-रात्रि के दृश्य आँखों के सामने आने लगे। हृदय रह रह कर फड़क उठता था। मैं कल्पना में बात-चीत करता था। "एक टिमटिमाता हुआ दीपक जल रहा है मैं चारपाई पर बैठा हूँ मेरी प्रिया मेरे कन्धे पर अपना सर रक्खे है मैंने उसके बालों पर हाँथ फेरते हुये कहा 'प्रिये मैं गरीब आदमी हूँ। तुम्हारे लिये आवश्यक वस्तुयें न दे सकूँगा। तुम अभी तक बड़े सुख से पली

हो यह कष्ट न सह सकोगी। मैंने तुम्हारे साथ विवाह किया। मेरी धृष्टता को क्षमा करना। वह मुझ से चिपट गई। कहा 'प्राण-नाथ मैं धन नहींचाहती, मैं तुमको चाहती हूँ मैंने तुम्हारा हृदय पाया है इससे बढ़ कर अमूल्य पदार्थ संसार में क्या हो सकता है।' मेरी आँखें आनन्द से नाच उठीं। गर्व से मस्तक ऊपर उठ गया। मैं कह उठा स्वर्ग-सुख यही है।" बरात बिदा हुई। साथी मज़ाक करने लगे। मैंने मुस्कुरा कर कहा 'सब्र का फल मीठा होता है।'

२

मेरी सोहाग रात्रि हो गई। बड़ी ही व्याकरण-शुद्ध भाषा में बातें हुई। प्रातःकाल मैं भोजन कर दफ़्तर चला गया। मेरी स्त्री ने ऊपर के एक कमरे को ख़ूब साफ़ कर सफ़ेद बिस्तर लगा दिया। कमरे को सजा दिया। मैं शाम को घर आया। माँ भोजन बना रहीं थीं। मुझे कुछ आश्चर्य हुआ पर कुछ बोला नहीं। अपने कमरे में चला गया देखा कि मेरी स्त्री बैठी एक उपन्यास पढ़ रही है। मुझे देखते ही उठ कर खड़ी हो गई। कमरा साफ़ था सफ़ाई किसको पसन्द नहीं है। मैं बड़ा खुश हुआ। सोचा इसी में लगी रही इस कारण भोजन नहीं बना सकी। इस प्रकार कई रोज बीत गये। एक रोज़ मैं दफ़्तर में बैठा हुआ था कि एकाएक डाकिये ने मेरे हाँथ में एक बड़ा सा

पार्सल रख दिया। मैंने कोई वस्तु मँगाई न थी घबड़ा उठा। देखा मेरी स्त्री के नाम है। स्त्री ने मेरे पास दफ्तर में भेज दिया था। बड़े असमंजस में पड़ा। समझ न पड़ता था कि क्या करूँ। लौटा दूँ या ले लूँ। अन्त में यह सोच कर कि स्त्री की पहली फ़र्माइश है मैंने पार्सल ले लिया। घर आकर उसे स्त्री को दे दिया। पर कुछ बोला नहीं। मैंने सोचा कुछ न बोलना ही इस बात का द्योतक है कि मैं इस बात को पसन्द नहीं करता। वह पार्सल लेकर ऊपर चली गई उसे खोला और एक पुस्तक निकाल कर पढ़ने लगी। माँ भोजन बना रही थीं मुझे बुरा लगा। ऊपर गया। ज़रा ऊँचे स्वर से बोला 'तुम्हें शर्म नहीं लगती माँ भोजन बना रही हैं और तुम उपन्यास पढ़ रही हो।' वह वहाँ से बड़बड़ाती हुई नीचे आई। तरकारी काटा। माँ ने पुकार कर कहा, 'बेटा बहू को क्यों डाटता फटकारता है ? बेचारी अभी बच्ची है उसके खेलने खाने की अवस्था है जब तक मैं हूँ इसे सुख से रह लेने दो। उसके बाद तो यह चक्की पीसनी ही पड़ेगी।' मेरी स्त्री यह कहती हुई ऊपर चली गई कि "हाँ पीसनी पड़ेगी, क्यों नहीं। स्त्री जन्म भर चक्की पीसने के लिये तो बनाई गई है।" मेरी माँ उसकी यह बातें सुन कर हँस पड़ीं, बोलीं 'देखो कैसी बच्चों की सी बातें करती है।' पर मुझे हँसी न आई। इसी प्रकार ६, ७

माह बीत गया। मेरी पत्नी बात बात में मुझसे झगड़ने लगी। मेरा जीवन विषाद पूर्ण हो गया, मैंने कई बार समझाने का प्रयत्न किया। सीता-सावित्री आदि का आदर्श बताया। वह हँस कर कह देती सुन्दर युक्तियाँ हैं पर अब वह समय नहीं रहा। मुझे उसके ऊपर क्रोध नहीं आता था, दया आती थी, करुणा होती थी। इधर आमदनी से खर्च अधिक होता। करीब १९, २० तारीख़ को ही प्रत्येक मास में वेतन के रुपये ख़र्च हो जाते थे। मैंने कुछ रुपया जमा कर रखा था। उसी से किसी प्रकार अब तक काम चला पर बिना योग के कुवेर का भंडार भी खाली हो जाता है। अब खर्च के लिये बड़ा कष्ट होने लगा। मैंने सम्हाल कर खर्च करने को कहा उसने झट से जवाब दिया कि मेरा भार नहीं सम्हाल सकते थे तो फिर विवाह ही क्यों किया था मैं कुछ चुराती तो हूँ नहीं। मैं तिलमिला उठा, अपने को सम्हाल कर कहा "शादी करके तो भूल ही की पर अब उसका कुछ उपाय नहीं। खर्च के विषय में केवल इतना ही कहना है कि आमदनी के हिसाब से खर्च करना चाहिये। उसने कहा अर्थ शास्त्र के इस भारी सिद्धान्त को मैं भी जानती हूँ। पर सामाजिक रहन सहन भी तो कोई चीज़ है। यदि आपको क़मीज़ और कोट पहन कर दफ़्तर जाना आवश्यक है तो मुझे भी कम से कम साफ़ धोती

पहनने का अधिकार है। मैंने नम्र हो कर कहा 'रमा अधिकार का प्रश्न नहीं है, प्रश्न है कि गृहस्थी का खर्च किस प्रकार चलाया जावे।' उसने कहा यह तो कोई कठिन प्रश्न नहीं है यदि आप अकेले गृहस्थी का खर्च चला नहीं सकते मुझे भी कार्य करने की आज्ञा दीजिये। हाँ मुझसे चक्की नहीं चलाई जायगी। यदि धुयें से पुरुषों की आँखें फूटने लगती हैं तो स्त्रियों की आँखें भी किसी विशेष वस्तु की नहीं बनी हैं। मैं कुछ न बोला वहाँ से उठकर बाहर चला गया।

एक दिन शाम को जब मैं आफिस से लौट कर आया देखा मेरी माँ एक टूटी चारपाई पर धूप में एक फटा चिथड़ा ओढ़े काँपती हुई लेटी हैं। उनको ज़ोरों का ज्वर चढ़ा हुआ था वे बेहोश थीं। इधर दो तीन मास से वे गृहस्थी चलाने के लिये अकथ परिश्रम कर रही थी। खर्च की कमी के कारण केवल एक समय आधा पेट खाती थीं और उस पर गृहस्थी के सारे काम करने पड़ते थे। मेरी आँखों से आँसू गिरने लगे, ऊपर गया श्रीमती जी बैठी कोई पुस्तक पढ़ रही थीं। मैंने, कुछ न बोल कर बिस्तर लिया और नीचे चला आया माँ को लिटा कर उसके सिरहाने बैठा रहा। सबेरे माँ की तबियत कुछ साफ़ थी मैं डाक्टर बुला नहीं सकता था। शहर में मेरे एक परिचित वैद्य थे। वे बिना फ़ीस लिये दवा करते थे, उनके

पास गया। क़रीब ८ बजे उन्हें इक्के पर बैठा कर घर ले आया। माँ बिस्तरे पर न थीं घबड़ा कर इधर उधर देखने लगा। रसोई में वे चूल्हा जलाये रोटी पका रही थीं। मैंने कहा माँ यह क्या कर रही हो ? उन्होंने कहा 'बेटा सबेरे उठ कर मैंने देखा चौका साफ़ है। तुम लोगों ने रात को कुछ नहीं खाया दो रोटी सेके देती हूँ क्या भूखा ही कचहरी जायगा।' मैंने कहा चलो वैद्य जी आये हैं दिखा दो। उन्होंने कहा—कहो तनिक देर ठहर जाँय दो रोटी सेक लूँ। मैंने कहा वह मेरे नौकर नहीं हैं। बड़ी मुश्किल से इतनी दूर आये हैं। माँ को बाहर ले जाकर वैद्य को दिखाया वैद्य जी ने पूछा यही भोजन पकाती हैं। क्या आप के स्त्री नहीं हैं ? मैं कुछ न बोला। माँ ने हँसते हुये कहा 'वैद्य बाबा अभी वह बच्ची है।' उनको ज्वर फिर से ज़ोरों से आ गया और वे लेट गईं। वैद्य जी के जाने के बाद मैं अपनी स्त्री के पास गया। उल्टा सीधा जो कुछ मेरे मन में आया बिना किसी बिचार के कह गया। मैंने क्रोध में कहा कि मैं तुम्हारा भार नहीं सह सकता तुम जहाँ चाहे चली जा सकती हो। वह डर सी गई। कुछ न बोली चुप चाप जो कुछ कहता गया सुनती गई। उत्तर के लिये बिना इन्तज़ार किये मैं नीचे उतर आया छुट्टी और दवा के लिये शहर जाना आव-

श्यक था। माँ को ओढ़ा कर मैं शहर चला गया। शाम को आने पर देखा कि मेरी स्त्री घर पर नहीं है। सब वस्तु ज्यों की त्यों रक्खी हैं। कुछ पुस्तकें, कुछ मामूली कपड़े और मेरी फोटो न थी। मैंने इसकी ओर ध्यान न दिया और माँ की सेवा करने लगा। ४,५ रोज में माँ की तबियत कुछ साफ हुई। उसने पूछा "बहू कहाँ है ?" मैंने कहा उसके नैहर से लेने आये थे बिदा कर दिया। सात रोज बाद मेरे नाम एक रजिस्टरी पत्र मिला। जिससे पता चला कि वह एक कन्या पाठशाला में ५०) वेतन पर अध्यापिका हो गई है।

स्त्री

१

छोटी अवस्था से ही मैं समाचार पत्र पढ़ने लगी उनमें अक्सर पुरुषों द्वारा स्त्रियों पर किये गये अत्याचारों का वर्णन निकलता था। मैं उसे पढ़ती और दाँत पीस कर रह जाती थी। पर उस समय यह न जान पाती थी कि अत्याचार का अधिकांश भाग कहानियों के रूप में है और कहानियों का सम्बन्ध घटना की अपेक्षा लेखक महाशय के मस्तिष्क से अधिक है। ६, ७ अनुवादित उपन्यासों के पढ़ने के बाद ही मैं अपने को हिन्दी साहित्य की पंडिता समझने लगी थी। मैंने पुरुषों से बदला लेने की प्रतिज्ञा की। मेरा बिचार था कि स्त्रियों ने

स्वयं अपनी दशा बिगाड़ रखी है। मैं अपने भाभी की दशा देख कर क्रोध से जलने लगती थी जिस रोज़ भैय्या के आने में तनिक भी देर हो जाय, उनके प्राण सूखने लगते थे। भूखों मर जायगी पर बिना उनके खाये पानी पीना हराम है। भाभी से और मुझसे अक्सर लड़ाई हुआ करती थी। मैं उनको बहुत बनाती और तंग करती थी। वे बहुत पढ़ी लिखी न थीं रामायण पढ़ लेती थीं। बात बात में 'सीता' 'सीता' किया करती थीं। मैं कहती "सीता ऐसी न होती तो राम निकाल ही क्यों देते।" वे कहतीं बीबी जो तुम क्या कहती हो मेरे तो समझ ही में नहीं आता। मैं खीझ कर कहती समझ में क्या आवे पत्थर। तुम्हारे तो रग रग में तुम्हारे पति जी आसन जमाये हुये हैं। वे मुस्कुरा कर कहतीं—'क्यों घबड़ाती हो तुम्हारे ऊपर भी आसन जमाने वाला शीघ्र ही आने वाला है।' मैं उपेक्षा से हंस कर चल देती।

मेरी शादी हुई, मेरा वास्तविक कार्यक्षेत्र आ गया। मेरी ससुराल में केवल मेरे पति और बूढ़ी सास के और कोई न था। मैंने सुन रखा था कि विवाह के बाद स्त्री पुरुषों में जो जिसके ऊपर अपना आतंक जमा लेता है वही जीवन भर प्रधान बना रहता है। अतएव मुझे पगपग पर अपने अधिकार की चिन्ता रहती थी। घर का छोटा से छोटा कार्य करते

समय भी मुझे इस बात का ख़याल होता था कि मैं घर की दासी नहीं हूँ। मुझे सदा यह भय बना रहता था कि कहीं मेरा व्यक्तित्व तो नष्ट नहीं हो रहा है। करीब एक साल व्यतीत हो गया पर हम लोग कभी जी खोल कर न मिले। मेरे पति मुझसे बहुत नम्र व्यवहार करते थे पर इसमें भी मुझे इनका कपट मालूम पड़ता था। मैं समझती थी कि हम लोगों को गुलाम बनाने का यह दूसरा ढंग है।

मेरे पति सदा चिन्तित रहते थे। उनका स्वास्थ भी नष्ट होने लगा। मुझे इससे बड़ा दुःख होता था पर इसको प्रकाशित करने में मैं अपनी दुर्बलता समझती थी। जब मैं अपने पति को मलिन मुख, नीचे को सिर किये, कुछ सोचते घर आते देखती थी मैं तड़प उठती थी। मेरा हृदय धड़कने लगता था। मैं जानती थी कि वे मेरे व्यवहारों से चिन्तित हैं। इच्छा होती थी कि दौड़ कर उनसे लिपट जाऊँ और रोते रोते उनके वक्षस्थल को भिगा दूँ। पर ज्योंही वे सामने आ जाते मैं तन कर बैठ जाती।

खर्च अधिक था और आमदनी कम। मेरी एक सहेली एक पाठशाला की प्रधान अध्यापिका थी। मैंने उनके पास लिखा। उन्होंने उत्तर दिया कि ५०) की एक जगह खाली है चली आओ। इन्हीं दिनों मेरी सास बीमार पड़ गइ। मेरे पति

उनके सिरहाने बैठे सिर दबा रहे थे। मेरी बार बार इच्छा होती थी कि जाकर भोजन बनाऊँ पर हिम्मत न पड़ती थी। रात को जब मेरे पति अपनी माँ के ही पास सो गये मैं दबे पाँव नीचे गई और रात भर 'माँ' के पैर दबाती रही। मैं रात भर अपने कार्यों पर पछताती रही अन्त में निश्चय किया कि सवेरे अपने पति से क्षमा माँगूगी। प्रातःकाल सो गई। न मालूम पतिदेव कितनी देर आये। आज पहले पहल मैंने उन्हें क्रोधित देखा। मैं सहम गई, उन्होंने कहा "मैं अब तुम्हारा भार सहन नहीं कर सकता तुम जहाँ चाहे चली जाओ" मैं बहुत देर तक खड़ी सोचती रही। अन्त में मैंने निश्चय किया कि मैं यह दिखा दूँगी कि बिना पुरुषों के स्त्रियों का गुजर हो सकता है। एक हैन्डबेग में मामूली सामान लेकर मैं चल खड़ी हुई।

२

प्रधान अध्यापिका मेरी प्यारी सखी थी मैनेजर के साथ उन की मित्रता थी। मेरा भी परिचय मैनेजर के साथ हो गया। मैनेजर एक युवा, धनी और विद्वान पुरुष थे। पहले तो उनके साथ बात इत्यादि करने में मुझे झिझक होती थी पर शीघ्र दूर हो गई। मेरी सखी स्कूल ही में रहती थी। मैं भी इन्हीं के साथ रहती थी। मैनेजर साहब अक्सर आ जाते थे बहुत देर

तक इधर उधर की बातें होती रहती थीं। वे स्त्री शिक्षा और स्त्री स्वतंत्रता के बड़े पक्षपाती थे और साथ ही साथ बड़े मिष्ठ भाषी भी थे। अभी तक उन्होंने शादी नहीं की थी और न आगे ही करने का विचार था। मेरी सखी अक्सर उन के यहाँ स्कूल के विषय में राय लेने जाती थी। उनका कार्य्य और सेवा देख कर मैं भी उनसे श्रद्धा करने लगी और जब कभी मकान पर आते बड़े आदर सत्कार के साथ उनको बिठाती और बातें करती।

एक रोज मेरी सखी से और मुझ से बड़ी देर तक विवाद होता रहा। विवाद शादी के प्रश्न पर आरम्भ हुआ था। उन्हों ने कहा:—"स्त्रियों का एक ऐसा संघ बनाया जाय जिस को केवल भारत की सेवा के और किसी बात की धुन न हो। उसमें न जाति पाँति का झमेला रहे और न शादी विवाह का पचड़ा। केवल एक बात का ध्यान हो, एक बात की आन हो, और एक बात का मान हो और वह भारत का। उसी के लिये जियें और उसी के लिये मरें!

मैंने कुछ सोचते हुए कहा—पद्मा कहती तो ठीक हो, बड़ा उत्तम बिचार है पर इसमें चरित्र दृढ़ता की बड़ी आवश्यकता है। पग पग पर ठोकर खा कर गिरने का भय है।

पद्मा—रमा पता नहीं तुम चरित्र का अर्थ क्या लगाती हो। बराबर चरित्र का तुम्हें भय लगा रहता है। चरित्र कोई कच्चा

घड़ा नहीं है जो तनिक सा धक्का लगा और वह फूट गया। कच्चा सूत नहीं जो ज़रा सा खिचाँव से टूट जाय। चरित्र के दायरे को तुम इतना संकुचित क्यों करना चाहती हो।

मैं—तुम चरित्र का अर्थ क्या लगाती हो?

पद्मा—चरित्र कोई स्थूल पदार्थ नहीं है। स्वयं इस की कोई स्थिति नहीं है। यह एक भावना है। देश और काल की आवश्यकतानुसार इसका निर्माण होता है। समय को जिस वस्तु की आवश्यकता होती है। जिससे उसका कार्य्य साधन होता है उसी को वह अच्छा समझने लगता है और जिस प्राणी में वह उन गुणों को देखता है उसी को चरित्र वान कहने लगता है और कुछ दिनों बाद वे गुण ही चरित्र के अर्थ में प्रयोग किये जाने लगते हैं। पर चरित्र की व्याख्या परिवर्तन शील है समय के अनुसार आवश्यकताओं में भी परिवर्तन होता है और उसी के अनुसार चरित्र में भी।

मैं—बहन मैं तुम्हारे कथन को न समझ सकी। चरित्र और सदाचार का क्या सम्बन्ध है? यह तो तुम ने बताया ही नहीं।

पद्मा—कोई खास बात नहीं कही जा सकती इसकी परिभाषा में भी परिवर्तन होता रहता है।

मैं—अपनी बासनाओं को अपने आधीन रखने को ही क्या सदाचार नहीं कहते?

पद्मा—हो सकता है कभी इसको सदाचार कहते रहे हों। भारत में एक समय था जब विरक्तता में ही सुख और शान्ति का अनुभव करते थे। इच्छाओं के दमन ही में उनको आनन्द आता था पर इसी भाव ने देश का नाश किया है। मनुष्यों को निकम्मा बना कर देश को गुलाम बना दिया। हमें अब निर्वाण की आवश्यकता नहीं है, मोक्ष की जरुरत नहीं है? अब हम स्वर्ग के लिये अपनी मातृभूमि की दुर्दशा नहीं देख सकतीं। एक अव्यक्त भावना के लिये अपना सर्वस्व नहीं लुटा सकतीं। जरुरत अब इच्छाओं के दमन करने की नहीं है। उनको बढ़ाने की है। उनमें ऐसी शक्ति पैदा करने की आवश्यकता है कि बिना उनकी पूर्ति के जीवन असम्भव हो जाय। एक की पूर्ति होते ही दूसरे के लिये प्रयत्न आरम्भ हो जाय। बस कार्य्य की तत्परता ही मेंआनन्द है। रमा, इस समय हम लोग एक दौड़ते भागते संसार में हैं। हाँथ पर हाँथ रख कर बैठने से काम न चलेगा।

मैं—तो क्या तुम बासनाओं को दमन करना नहीं चहती?

पद्मा—नहीं! तुम चौंको नहीं। मैं संसार में जीवित रहना चाहती हूँ। कुछ काम करना चाहती हूँ अपनी समस्त शक्ति अपनी इच्छाओं के दमन करने में ही खर्च करना नहीं चाहती।

मैं—पद्मा तुम अभी कह चुकी हो कि तुम शादी नहीं करोगी और साथ ही तुम अपनी वासनाओं को दबाना भी नहीं चाहतीं। इसका क्या मतलब ?

पद्मा—रमा ! प्राणी को भूख लगती है वह भोजन करता है। प्यास लगती है पानी पीता है। जाड़ा लगता है कपड़ा पहनता है इसमें तुम्हें आश्चर्य क्यों हो रहा है ?

मैं—सतीत्व के सम्बन्ध में तुम्हारी क्या राय है।

पद्मा—सतीत्व शब्द को तुमने एक हौआ बना रक्खा है। वास्तव में वह ऐसा नहीं है। जिस प्रकार तुम अपनी और आवश्यकताओं की पूर्ति करती हो इसकी भी पूर्ति कर सकती हो। एक आदमी के पीछे अपना जीवन बर्बाद न करो। इससे कुछ अच्छे काम हैं कुछ जरूरी काम हैं उनको करो। शादी करने की कोई ज़रूरत नहीं। इससे झंझट बढ़ जाते हैं। स्त्री और पुरुष दोनों का कार्य क्षेत्र संकीर्ण हो जाता है।

मैं—बच्चों की क्या दशा होगी ?

पद्मा—इस समय भारत को गुलाम सन्तान की आवश्यकता नहीं। आबादी ज़रूरत से अधिक है। जानती हो फ़िजी और मिर्च में तुम्हारे देशवासियों की क्या दशा हो रही है ?

मैं—माना सामाजिक नियम तुम्हारे हाँथ में हैं जिस प्रकरा चाहो उनमें परिवर्तन करो पर प्राकृतिक नियम तुम्हारी इच्छाओं के परे हैं। उनके लिये क्या करोगी ? आग का स्वभाव जलाना है वह अपना गुण क्यों छोड़ने लगी ?

पद्मा—रमा तुमने वर्तमान विज्ञान के विषय में कुछ भी अध्ययन नहीं किया है। ऐसे ऐसे आविष्कार हो चुके हैं कि सन्तान का पैदा करना या न करना तुम्हारी इच्छाओं पर है। अब वह दशा नहीं है कि बिना तुम्हारी मर्जी के भी बच्चा तुम्हारे गले की जंजीर हो जावे।

मैं—तुम गृह सुख को बिल्कुल नष्ट कर देना चाहती हो ?

पद्मा—मैं घर का नाश कर सम्पत्ति का विनाश कर देना चाहती हूँ, बहुत रोज तक प्राणी घर की चहार दिवारी के भीतर बन्द रहा। बन्धन को तोड़ कर अब स्वतंत्र होना होगा। न कुछ मेरा है और न तुम्हारा, सब देश का है और हम सब लोग देश के सेवक हैं। सेवक की कोई सम्पत्ति नहीं होती उसका कार्य तो केवल सेवा करना है।

मैं—पद्मा तुम देवी हो या दानवी ?

पद्मा ने मुस्कुरा कर कहा—न मैं देवी हूँ और न दानवी मैं मानवी हूँ। रमा, तुमको मेरी बातें विचित्र मालूम पड़ती हैं पर बहन यदि कुछ देर शान्ति पूर्वक इन पर विचार करोगी तो

तुम्हें सब कुछ सत्य मालूम पड़ेगा। दिल और दिमाग़ में अन्तर है। तुम क्या हो इससे मुझे कुछ मतलब नहीं। पर तुम क्या करती हो इससे मेरा मतलब है। तुमसे हमारे देश को कुछ भी लाभ न होगा पर तुम्हारे कार्यों पर देश का भविष्य अवलम्बित है। एक कारीगर अपने कार्य में चाहे जितना कुशल क्यों न हो पर जब तक वह कोई वस्तु बना कर हमारे सामने नहीं रखता तब तक उसकी कारीगरी से हमको कुछ भी लाभ नहीं हो सकता। भारत ने "मनुष्य क्या है" इस पर बहुत समय नष्ट किया है। अब इसको छोड़ो। मनुष्य के व्यक्तिगत जीवन से तुम्हारा कुछ भी सम्बन्ध नहीं। वह शराब पीता है या शर्बत इसके जानने की फिक्र में अपना सब समय नष्ट न कर दो। वह संगठन कर सकता है या नहीं देश के लिये अपना सब कुछ अर्पण कर सकता है या नहीं, अपनी मातृभूमि को स्वतंत्र बनाने के लिये नयी नयी युक्तियाँ सोच सकता है या नहीं यदि वह यह सब कर सकता है तो हमारा प्यारा है, हम उसका आदर करेंगी चाहे वह रात को अपने दस्तर खान पर केक खाता हो और चाहे चौके पर जाड़े के दिनों में नंगे बदन दाल रोटी। रमा मानलो एक मनुष्य सुन्दर व्याख्यान दाता है उसके व्याख्यान का असर लोगों पर शीघ्र पड़ता है, युक्तियाँ उसकी सुन्दर होती हैं। वह शराब के ख़िलाफ़ बोलता है। जनता उसके प्रभाव से

शराब छोड़ देती है । बस उसका कार्य हो गया। पर इससे यह नतीजा निकालना कि वह भी शराब न पीता होगा हरदम ठीक नहीं होता। मैं तो उपयोगिता की क़ायल हूँ। मैं प्रत्येक कार्य को उपयोगिता की तराज़ू पर तौलती रहती हूँ।

मैं—पद्मा ! तुम्हारी बातों ने आज मेरे हृदय में एक भारी उथल पुथल मचा दी है। मैं भी स्वतंत्रता की पक्षपातिनी हूँ पर उसका यह विकराल रूप मेरे सामने नहीं था। मैं घबड़ा गई हूं। इसके विषय में सोचने के लिये मुझे समय दो।

पद्मा—खूब सोचो पर सोचती ही न रह जाना। सोचने का समय अब व्यतीत हो चुका। यह कार्य करने का समय है। ध्यान करना छोड़ो काम करना सीखो।

मैं पद्मा के विचार सुन कर अवाक सी रह गई। उसकी युक्ति तर्कमय थी पर हृदय उसको ग्रहण करने में हिचकता था। पद्मा एक प्रचण्ड विद्युत शक्ति थी मैं उससे डरने लगी पर न चाहते हुये भी मैं उसकी ओर खिंची जाती थी। मैं उससे घृणा करना चाहती थी पर जाकर उसके पास बैठती थी। मैं महिला संघ की सदस्या हो गई। मैं बराबर उसके आदेशानुसार काम करती थी पर मेरे हृदय में एक भारी आँधी चल रही थी। पद्मा को उसका कुछ पता न था। ज्यों ज्यों मैं उसके

आन्तरिक जीवन से परचित होती गई मुझे उससे घृणा होती गई। अब मैनेजर साहब का आना मुझे अच्छा न लगता था पर अब वे अधिक आने लगे थे। उनके आने पर मुझे उनका स्वागत करना ही पड़ता था। वे संघ के सभापति भी थे। पद्मा कभी कभी मेरे सामने ही उनसे मज़ाक़ कर बैठती थी। उधर से भी उत्तर मिलता और इस प्रकार वह बढ़ जाता। मैं उसमें भाग न ले सकती और भीगी बिल्ली की भांति बैठी रहती। मैनेजर साहब कभी कभी मेरे ऊपर भी कटाक्ष कर बैठते पर मैं कुछ जवाब न देती। मेरा समस्त शरीर जल उठता था पर भय के कारण कुछ जवाब न देती थी। नशा उतर चुका था, कभी कभी घर वापस जाने के लिये सोचती पर हिम्मत न पड़ती थी। एक रोज मैनेजर साहब मोटर पर आये। साथ में घूमने चलने की ठहरी। मैंने जाने से इन्कार किया पर भला पद्मा काहे को छोड़ती। रास्ते में मैनेजर साहब का व्यवहार बड़ा आपत्ति-जनक रहा। बातें करते करते उन्होंने मेरे गाल पर अँगुली से मार दिया। मैं कट मरी चाहा कि मोटर पर से कूद पड़ूं पर शरीर शून्य हो रहा था। पद्मा हँस रही थी। मैं एकाएक कह उठी 'यह पिशाचों का गिरोह है। सब भ्रम है।' उसने हँसते हुये कहा, "यही सही पर अब आनन्द इसी में है यह संकोच की प्रथम झिझक है।" मैं कुछ

न बोली। बाहर की ओर देखती बैठी रही। मोटर मकान पर आई, मैं उतर कर अपने कमरे में चली गई। भीतर से किवाड़ा बन्द कर लिया। मेरा समस्त जीवन मेरी आँखों के सामने से गुज़र गया। अपने जीवन धन की किस प्रकार उपेक्षा की। उनके लहलहाते हुये प्रेम पौधे को किस प्रकार रौंदा उनके साथ कितना अनाचार और अत्याचार किया। अपनी बूढ़ी माँ के साथ कभी हँस कर बातें न कीं। सुख, शान्ति, आनन्द मैंने सब कुछ त्याग दिया, सब की आहुति देदी। पर अन्त में कुछ हाँथ न आया। मैं रो पड़ी और ख़ूब जी भर कर रोई। आज जीवन में मैं पहली बार रोई थी। मुझे इससे बड़ी शान्ति मिली। मैं सो गई, सबेरे पाठशाला गई पर आज मेरा मन पढ़ाने में न लगा। शाम को बरामदे में बैठी इन्हीं सब बातों को सोच रही थी कि मैनेजर साहब की गाड़ी आ पहुँची। मेरा रक्त खौल उठा। वे आकर बैठ गये। इधर उधर की बातों के पश्चात उन्होंने कहा कि पद्मा आज समिति की बैठक है तुम नहीं गई? पद्मा ने घड़ी देखते हुये कहा "अभी जाती हूँ।" आप तो अभी कुछ देर तक ठहरेंगे मैं आपकी गाड़ी लिये जाती हूँ। वह जाकर गाड़ी में बैठ गई। मुझसे बोली "रमा मैं शीघ्र ही लौट आऊँगी तब तक मैनेजर साहब से बात चीत करना।" मैं कुछ न बोली नीचे सर किये बैठी

रही। मैनेजर साहब ने कुछ देर तक इधर उधर की बातें करने के बाद कहा "रमा चलो बैठक में चलें यहाँ बैठना ठीक नहीं।" मैंने कहा "नहीं यहीं बैठूँगी, आप चलें वहाँ पर पुस्तकें रक्खी हैं बैठ कर पढ़ें" उन्होंने छड़ी से मुझे खोदते हुये कहा, "तुम्हें छोड़ कर" मैं कुछ न बोल सकी। उठ कर उन्होंने मेरा हाँथ पकड़ लिया और कहा "चलो रमा ·····" वह आगे कुछ न कह पाये थे कि मेरे समस्त शरीर में बिजली सी चमक गई। मैंने क्रुद्ध सर्पिणी की भांति डाट कर कहा हाँथ छोड़ दीजिये। पर उन्होंने हँसते हुये कहा "यह अदा।" आगे सुन सकने की ताब मुझमें अब न थी—मैंने कड़क कर कहा "जो स्त्री स्वतन्त्रता के लिये अपने पति तक को त्याग सकती है वह उसकी रक्षा के लिये दूसरे का खून कर सकती है और अपना प्राण दे सकती है।" मैंने बड़े जोरों से उन्हें धक्का दिया—वे सम्हल न सके कुर्सी पर गिर पड़े। सिर से रक्त बहने लगा। मेरी आँखों से चिनगारियाँ निकल रही थीं। मैं बिना कुछ सोचे समझे बँगले के बाहर निकल गई।

पुरुष
(उपसंहार)

सवेरे का समय था। मैं अपने मकान के बारामदे में टहल रहा था इतने में देखता हूँ कि मेरी स्त्री बड़ी तेजी से मेरी ओर

लपकी चली आ रही है। उसकी आँखें सूजी हुई थी और वे अँगारे की भांति चमक रही थीं। वह मेरे पास आते ही मेरे पैरों पर गिर पड़ी। विलख विलख कर रोने लगी केवल इतना ही कह सकी, "जीवितेश क्षमा करो, मैं अपने किये का फल पा गई। मेरा भ्रम मिट गया।" उसके आँसुओं से मेरे पैर भीग गये। मैं भी अपने को सँभाल न सका, देखा सामने कोई न था उसको उठा लिया, हृदय से लगा लिया। उसने सिसकते हुये कहा "प्यारे क्षमा करो, जब तक क्षमा न करोगे मुझे शान्ति न मिलेगी, मैं मर जाऊँगी।" मैंने उसके आँसू पोंछते हुये कहा "प्यारी काहे की क्षमा, मैंने तुम्हें जाने के लिये नहीं कहा था। यह तुम्हारा घर है जब चाहे जाओ, जब चाहे आओ।" उसने कातर स्वर में कहा, "नाराज़ हो" अब मुझसे न रहा गया। मैंने उसे हृदय से लगा लिया। धीरे से आँसुओं से भीगे हुये उसके कपोलों को चूम लिया। अपने जीवन में यह प्रथम चुम्बन था, उसने मेरी छाती में अपना मुँह छिपा लिया······।

भीतर जाकर मैंने बहू के आने का समाचार माँ को दिया। वे दौड़ीं इतने में वह स्वयं आकर उनके पैरों पर गिर पड़ी। मैं बाहर चला आया। मेरी इच्छा पूर्ण हुई। पात्र वही था पर रस में भेद था।

कर्तव्य

कर्त्तव्य

नरेन्द्र प्रयाग के सुप्रसिद्ध विद्यालय में पढ़ता था। उसके विद्यालय से मिला हुआ एक ईसाई बाड़ा था। उसमें वे भारतीय जो ईसाई धर्म को ग्रहण करते थे रहा करते थे। एक एक कमरे में एक एक परिवार रहता था। विद्यालय और बाड़े में केवल एक सड़क का अन्तर था। बाड़े के कमरे की खिड़कियाँ सकड़ की ओर थीं। दोनों के आगे एक बाग़ था। कालेज विद्यालय के लड़के प्रायः उस सड़क से बाग़ में घूमने जाया करते थे। नरेन्द्र एक रोज अपने एक मित्र के साथ बाग़ में घूमने जा रहा था। बाड़े के बीच के कमरे की खिड़की खुली हुई थी। उसकी दृष्टि एकाएक कमरे के भीतर गई। एक बालिका कुर्सी पर बैठी पुस्तक पढ़ रही थी। हवा चल रही थी। बाल उसके चेहरे पर उड़ रहे थे। नरेन्द्र ने उसे अपने मित्र को दिखाते हुये कहा, "सुरेन्द्र, देखो इस बालिका ने यहाँ रहते हुये भी अपने भेष भूषा को नहीं बदला।" सुरेन्द्र

ने कहा, "मालूम होता है अभी हाल ही में आई है। देखने से बँगाली मालूम होती है।" नरेन्द्र ने कहा "पता नहीं कौन है" दोनों मित्र बातें करते हुये पार्क चले गये। लौटते समय देखा लैम्प जल रहा है। बालिका अब भी पुस्तक पढ़ रही है। उसने एक बार इन लोगों की तरफ देखा और फिर पढ़ने में ध्यानावस्थित हो गई।

जाड़े के दिन थे, इधर नरेन्द्र कई रोज़ से घूमने नहीं गया था। उसका चित्त पढ़ने से उचट गया वह पार्क की ओर चल पड़ा। घड़ी में ६ बजे थे प्रातः काल का सुहावना पवन चल रहा था वह कुछ सोचता हुआ जा रहा था। कमरे की खिड़की के सामने पहुँचा, अनायास उसकी दृष्टि अभ्यस्थ पथिक की भांति कमरे की ओर चली गई। ढंडक थी पर खिड़की खुली हुई थी। बालिका ठीक उसी समय सो कर उठी थी। उसके कपड़े में सिकुड़नें पड़ी हुई थीं। सिर के बाल चेहरे पर बिखरे हुये थे। ओठ सूखा था और आँखों में कुछ ललाई छाई हुई थी। देह अलसाई हुई थी। नरेन्द्र एक पल के लिये ठहर गया। बालिका की भी आँखें ऊपर उठीं क्षण भर के लिये दोनों की आँखें मिल गईं। नरेन्द्र आगे बढ़ गया, वह क़रीब एक घंटे तक पार्क में घूमता रहा पर उसको अच्छा न लगा। छात्रालय को लौट पड़ा। कमरे के सामने पहुँचने पर देखा

कि बालिका छड़ पकड़े खड़ी है। उसको देखते ही उसने छड़ छोड़ दिया और नीचे को सर करके कुछ सोचने सी लगी।

एक रोज शाम को नरेन्द्र एक समाचार पत्र पढ़ते हुये पार्क में घूम रहा था। बालिका भी पार्क में आई, वह कई रोज़ से आ रही थी। साथ में तीन चार स्त्रियाँ थीं, कुछ देर तक वे घूमती रहीं फिर लौट गईं। अँधेरा होने लगा पर नरेन्द्र पढ़ने में व्यस्त रहा। एक एक करके सब घूमने वाले बाग से चले गये। बिल्कुल शान्ति छा गई, अन्धकार बढ़ता गया। नरेन्द्र को पढ़ने में कठिनता पड़ने लगी वह घर के लिये चल पड़ा उसने देखा एक स्त्री बाग़ के दूसरी ओर से उसकी ओर आ रही है। नरेन्द्र ठहर गया। बालिका 'परिचित अनजान' थी।

नरेन्द्र बड़े असमंजस में पड़ा। बहुत सोचने पर भी निश्चय न कर सका कि आगे बढ़ जाय या खड़ा रहे। बालिका आकर उसके पास खड़ी हो गई। एक क्षण तक दोनों चुपचाप खड़े रहे। नरेन्द्र ने नम्र स्वर में पूछा "क्या मुझसे आपका कुछ काम है ?' बालिका कुछ न बोली, नरेन्द्र ने फिर से उसी प्रश्न को दोहराया पर कुछ उत्तर न मिला। वह आगे बढ़ा, बालिका ने अस्फुट स्वर में कहा

"हाँ आप ही से" वह ठहर गया दोनों फील्ड में बातें करते हुये घूमने लगे।

२

लैम्प धीमा धीमा जल रहा था। कमरे में नरेन्द्र कुर्सी पर बैठा था। सामने नीचे को सर किये बालिका बैठी थी। दोनों के सामने एक छोटा सा टेबुल रक्खा था। नरेन्द्र ने कहा "प्रेसी तुमने इस समय मुझे क्यों बुलाया है ?"

बालिका कुछ न बोली, नरेन्द्र ने फिर कहा, "क्यों, बोलती क्यों नहीं ?"

बालिका ने मृदु स्वर में कहा, "मेरा नाम प्रेसी नहीं है।"

नरेन्द्र को अपनी भूल मालूम हुई, मुस्कुराते हुये बोला, "अच्छा कमला तुम्हीं सोचो यह समय भेट करने का है।" कमला ने नरेन्द्र की ओर देखा लम्बी साँस ली और अपना सर नीचे कर लिया। कुछ देर तक चुप रही, धीरे धीरे बोली। "आप मेरा क़िस्सा जानते हैं। मेरी माँ किस प्रकार किस कठिन समय में जब चार रोज़ तक उनको अन्न का एक दाना नहीं मिला मुझे मृत्यु से बचाने के लिये ईसाई हुई थीं। उस समय मैं अबोध बालिका थी। उन्हीं के साथ मैं भी यहाँ पर आई। माँ ईसाई हो जाने पर भी हिन्दू धर्म को मानती थीं, कृष्ण की उपासना करती थीं। वे बराबर मुझे छिपे छिपे हिन्दू धर्म की

शिक्षा देती रहीं, जब मैं १२, १३ वर्ष की थी वे मर गईं, तब से मैं संसार में अकेली हूँ। मुझे अपनी माँ के अन्तिम शब्द बराबर स्मरण है बेटी अपने धर्म को न भूलना।" वह कुछ देर के लिये ठहर गई, "पर अब कुछ ऐसे कारण आ गये हैं कि मैं अकेली नहीं रह सकती इसी विषय में राय लेने के लिये आपको बुलाया है।"

नरेन्द्र—तुम्हारा हाल तो मैं पहले ही से जानता हूँ, तुम शुद्ध हो, पर दुनियाँ को दिखाने के लिये कतिपय बातें करनी ही होंगी। मैं शीघ्र इसका प्रबन्ध करूँगा।

कमला—"उसके पश्चात"

नरेन्द्र—उसके पश्चात ही का तो प्रश्न विकट है। अभी तक उसके लिये मैं कुछ प्रबन्ध न कर सका और न यही सोच सका कि उसके लिये मुझे क्या करना चाहिये। इसी लिये अभी तक मैंने शुद्धि के लिये भी कुछ नहीं किया।

कमला—"क्यों क्या मेरे लिये हिन्दू धर्म में कोई स्थान नहीं ?"

नरेन्द्र—हिन्दू धर्म में समस्त संसार के लिये स्थान है। यह प्रश्न धार्मिक नहीं सामाजिक है।

कमला—"तो क्या आप मुझे बीच ही में छोड़ देंगे ?"

नरेन्द्र—"मेरे मार्ग में बड़ी बाधायें हैं।"

कमला—मैं विधर्मी हूँ, ईसाई हूँ यही न। एक तो मैं हिन्दू धर्म को मानती हूँ। कृष्ण की भक्ति करती हूँ पर एक बालिका क्या इसी लिये घृणा की पात्र है कि वह ईसाई है? क्या उसके हृदय नहीं, क्या उसके मस्तिष्क नहीं?

नरेन्द्र—नहीं कमला धर्म का डर नहीं है। धर्म एक दूसरे को अलग नहीं करता। एक दूसरे से घृणा करना नहीं सिखाता।

कमला—समाज का डर है?

नरेन्द्र—यही समझ लो। कमला मुझे दुःख है कि मैं एक नवयुवक की भांति तुम्हारे प्रस्ताव का स्वागत नहीं कर सकता। मैं सामाजिक कुरीतियों को दूर करना चाहता हूँ पर उससे अलग होकर नहीं कर सकता। मैं उसमें रह कर ही सुधार कर सकता हूँ। भला तुम्हीं सोचो मैं तुम्हारे साथ में किस समाज की स्थापना करूँगा।

कमला—मैं नहीं जानती किस की। मैं आपकी भांति यह भी नहीं सोच सकती कि उससे मेरा बुरा होगा या भला। आप मुझे यहाँ से बचाइये। अब मुझे लाज छोड़ कर कहना पड़ता है मेरे पीछे दो नर पिशाच लगे हैं। मेरा रहना मुश्किल है। और दुख के साथ कहना पड़ता है कि जो यहाँ के प्रधान हैं वे भी कुछ नहीं बोलते।

नरेन्द्र—तुम्हें यहाँ से बाहर निकाल ले चलने का प्रश्न विकट नहीं है पर उसके बाद जीविका का प्रश्न विकट है। मेरी स्थिति तो तुम जानती ही हो।

कमला—तो आपका कहना है कि रोटी के लिये धर्म······ इसके आगे वह कुछ न कह सकी।

नरेन्द्र—कदापि नहीं। इतनी हताश न हो।

कमला—हमें आप बाहर निकाल ले चलिये। कृपा कर सौ, डेढ़ सौ, का प्रबन्ध कर दीजियेगा। मैं सिलाई का काम जानती हूँ। खाने भर के लिये कमा लूँगी।

नरेन्द्र—तुम अभी बच्ची हो। संसार का अनुभव नहीं, वह इतना पवित्र नहीं है। तुम क्या समझती हो कि भूत तुम्हारा पीछा वहाँ पर छोड़ देंगे ?

कमला—तो फिर संसार में मुझ अभागिनी के लिये कोई स्थान नहीं।

नरेन्द्र—कमला घबड़ाने से कोई लाभ नहीं। धैर्य पूर्वक विचार करने ही से लाभ होगा।

कमला—आप मुझे प्यार करते हैं ?

नरेन्द्र—इस प्रश्न की कोई आवश्यकता नहीं। इसका उत्तर जानने पर भी तुम्हारा कुछ कल्याण नहीं हो सकता। कमला मैं तुम्हें प्यार करता हूँ या नहीं, इसका उत्तर देना सरल

नहीं है। उत्तर के पहिले मुझे अपनी शक्ति को तौलना पड़ेगा। मैं जानता हूँ तुम पवित्र हो। तुम्हारे नस नस में हिन्दुत्व का खून बह रहा है। पर समाज ने हम दोनों के बीच में एक बड़ी गहरी खाई खोद दी है। हो सकता है तुम्हें प्यार करते हुये भी इस जन्म में मैं तुम्हें न पा सकूँ। पर तुम्हारा ध्यान मुझे हमेशा बना रहता है और बना रहेगा। मेरी यह हार्दिक इच्छा है कि मैं तुम्हारे लिये कुछ समुचित प्रबन्ध कर दूँ। मैंने मन्दिर के प्रधान जी से बात चीत की थी। उन्हें कोई आपत्ति नहीं। बनारस के रईस आर्यसमाजी नवयुवक मेरे मित्र हैं उनसे भी मैंने कहा था वे इधर झुके हुये मालूम पड़े थे। पर आज कल वे यहाँ हैं नहीं। मैं उनसे शीघ्र मिलने के लिये बनारस जाना चाहता हूँ। तुम घबड़ाओ नहीं कुछ न कुछ शीघ्र प्रबन्ध होगा।

कमला कुछ देर तक चुप रही। उसकी आँखों में आँसू भर आया। नरेन्द्र की ओर देखा वह छत की ओर देख रहा था। उसके चेहरे से दुख प्रकट हो रहा था। कमला ने रुंधे स्वर में कहा, "मुझे आश्रय दीजिये मैं विधर्मी ही सही। पर आपकी शरण में हूँ। मैं तो केवल आपको जानती हूँ। आप चाहे जिसको सौंप दें।" कहते कहते उसका गला भर आया।

नरेन्द्र ने उसको समझाते हुये कहा, "कमला अपने को संभालो।" भावों के प्रबल वेग को कम करो।

कमला अपने को अधिक न संभाल सकी रोते रोते बोली:"—हिन्दू धर्म के नाम पर एक असहाय-बालिका जान कर मेरी, मेरे सतीत्व की रक्षा करो। इस नरककुण्ड से निकालो, अब नहीं सहा जाता। यहाँ के पैशाचिक व्यवहार देख कर कलेजा मुँह को आने लगता है। मैं कुछ नहीं चाहती केवल आश्रय चाहती हूँ। मैं मन्दिर के कोने में पड़ी रहूंगी। हमें यहाँ अब न छोड़ो। मेरा सर्वनाश हो जावेगा।" वह सिसक कर रोने लगी। नरेन्द्र, सरल सिद्धान्तवादी नरेन्द्र का हृदय भर आया। यद्यपि उसने इस मामले में अपने को न फंसाने का निश्चय किया था पर वह अपने को न रोक सका। कमला के आँसू पोछते हुये कहा, "कमला मैं अपने कर्तव्य को जानता हूँ एक शरणागत की रक्षा में अपना सब कुछ अर्पण कर दूँगा। तुम कुछ चिन्ता न करो, मेरे रहते संसार में कोई तुम्हारा बाल बाँका नहीं कर सकता। कल शाम को पार्क में मिलो। इस समय मुझे क्षमा करो।"

नरेन्द्र बाहर निकला। छात्रालय की ओर न जाकर पार्क की ओर चला गया।

३

नरेन्द्र के बनारसी मित्र ने 'प्रसी' से सम्बन्ध करने से इन्कार कर दिया। हाँ पचास रुपया मासिक देने का वचन दिया। नरेन्द्र चिन्तित भाव से पार्क में घूम रहा था। वह जितना ही इस मामले से दूर रहना चाहता था उतना ही फंसता जाता था। धीरे धीरे कमला पार्क में आई। वह घबड़ाई हुई सी थी। नरेन्द्र के बग़ल से निकलते हुये उसने उसके हाँथ में एक कागज़ दिया।

'जानेमन प्रसी'!

आज ठीक साढ़े पाँच बजे मैं बिलियम के साथ आऊंगा। तुम आज इन्कार नहीं कर सकतीं कई रोज़ से बहाना बना रही हो आज नहीं बच सकतीं। हमारे साथ चलना होगा। तैयार रहना। हमने सब ठीक कर लिया है। सेन रिचर्ड से पूछ लिया है। उन्हें कोई आपत्ति नहीं। माईडार्लिङ्ग (My Darling) पता नहीं तुम इतना क्यों घबड़ाती हो। खैर सब ठीक हो जावेगा पहले सभी को घबड़ाहट होती है।

तुम्हारा जांनिसार
'जान'

नरेन्द्र का मुख लाल हो गया। वह क्रोध से ओठ चबाने लगा। घड़ी में देखा सवा पाँच बजे हैं। वह ज़ोर ज़ोर से टहलने लगा। जब कमला के पास पहुँचा दृढ़ स्वर में कहा कुछ डर नहीं। इतने में एक किराये की गाड़ी आकर पार्क के फाटक पर खड़ी हो गई उसमें से एक नवयुवक उतर पड़ा। कमला पास ही खड़ी थी। उसको देखते हो चीख़ उठी और पार्क के दूसरी ओर जाने लगी। वह आदमी लपक कर आगे बढ़ा और उसका हाँथ पकड़ कर बोला "असी मैं तुम्हारे लिये आया हूँ।" चलो गाड़ी तैयार है, 'मेरी' ने बतलाया कि तुम पार्क में हो।

कमला ने हाँथ झिटक कर कहा, "हाँथ छोड़ दो मैं तुम्हारे साथ नहीं जाऊंगी। मुझे दिक़ मत करो।" आगन्तुक ने बड़ी ढिठाई के साथ कहा, "ये नखरे! चलो।" उसने फिर से हाँथ पकड़ लिया। वालिका चिल्ला उठी। एक झाड़ी की ओट से निकल कर नरेन्द्र ने बड़े जोर से उस आदमी को धक्का मारा। वह गिरते गिरते बचा। नरेन्द्र ने दपट कर कहा

'एक स्त्री को छेड़ते लज्जा नहीं आती'

जान को बड़े ज़ोर से क्रोध चढ़ आया था। उसने लाल लाल आँखे निकाल कर कहा "बदमाश जानता है यह औरत हमारा है। भाग जा यहाँ से नहीं तो खून पीलूँगा।

नरेन्द्र ने कहा "जानता हूँ यह तेरी मौत है। चला जा सीधे यहाँ से पाजी कहीं का"

जान एक दम नरेन्द्र के ऊपर टूट पड़ा। पर वह पहले ही से तैयार था। इतने जोर से धक्का मारा कि वह नीचे आ गिरा। उसका साथी यह देख कर दौड़ा पर नरेन्द्र ने उसे भी उठा कर पटक दिया। शोर गुल होने से ५, ६ आदमी और आ गये। खबर बोर्डिङ्ग में पहुँची साठ सत्तर विद्यार्थी हाकी स्टिक आदि लिये हुये आ पहुँचे। ईसाई बाड़े से बहुत से ईसाई भी आ गये। मामले ने तूल पकड़ लिया। कमला भय के मारे काँपने लगी। ईसाई बाड़े के मालिक रिचर्ड ने पूरा मामला सुनने पर कहा, "अच्छा झगड़े की कोई जरूरत नहीं। आप लोग अपने अपने घर जाइये। प्रेसी हमारे साथ जायगी। भूल से झगड़ा हो गया। बाबू साहब ने समझा यह कोई हिन्दू लड़की है। उनको नहीं मालूम था कि इसमें और मिस्टर जान में बहुत दिनों से कोर्ट शिप हो रहा है इसीलिये वे नाराज हो गये।"

नरेन्द्र ने कड़े स्वर में कहा "नहीं प्रेसी आप के साथ नहीं जायगी। यह दशा देखते हुये उसे आपके हाँथ में देना मौत के हाँथ में देना है।"

रिचर्ड—तो कहाँ जायगी ?

नरेन्द्र—वह मेरे साथ जायगी।

रिचर्ड—आप ज़बरदस्ती करेंगे ? वह मेरी है।

नरेन्द्र—हाँ यदि वह ख़ुशी से जाना चाहे तो जा सकती है। मुझे कोई भी आपत्ति नहीं।"

कमला ने काँपते हुये स्वर में कहा "मैं वहाँ जाने के पहिले विष खा लूँगी।

रिचर्ड ने समझाते हुये कहा "बेचारी बालिका डर गई है। उसको ले जाकर भला आप क्या करियेगा। वह ईसाई है कोई भी हिन्दू उसके साथ विवाह न करेगा।"

नरेन्द्र—यदि ऐसी राजी है तो मैं विवाह करूँगा।

कमला ने नरेन्द्र का हाँथ पकड़ कर कहा मुझे बचाइये। ये लोग मुझे नष्ट कर देंगे।

नरेन्द्र ने गम्भीर स्वर में कहा 'कुछ डर नहीं तुम मेरी हो।'

उपस्थित विद्यार्थी समुदाय एक क्षण चुप रहा। एका एक चिल्ला उठा, "नरेन्द्र की जय" रिचर्ड बहुत बिगड़ा। वह बोला "मैं पुलीस को बोलाता हूँ। यह डाका डालना है" विद्यार्थी हँस पड़े। शीघ्र गाड़ियाँ बोलाई गईं। सब आर्य-समाज मन्दिर की ओर चल पड़े। रिचर्ड चिल्लाता ही रह गया।

कड़ुआ सत्य

कड़ुआ सत्य

किशोर

नलिनी को समाज ने मुझ से छीन लिया, उसके हवाले कर दिया जिसका उसके ऊपर कुछ भी अधिकार न था। उस समय मैं विद्यार्थी था कुछ न कर सका। हृदय मसोस कर रह गया। इस घटना को घटे क़रीब पाँच वर्ष हो गये। मेरे जीवन में बहुत से उतार चढ़ाव हुए। मैं विद्यार्थी से वकील हो गया। वज़ीफ़ा लेने के स्थान में देने लगा। समाज पर मेरा अधिकार हो गया। मेरे समस्त कार्य नियम पूर्वक होते थे। पर दिल की लगी नहीं भूलती। मैं भी नलिनी को न भूल सका। अब भी उसकी याद मुझे आ जाती थी। मैं सोचा करता था कि उस पर वास्तव में किसका अधिकार है। मेरा या उस मनुष्य का जिस के हाथ में वह जबरदस्ती सौंप दी गई है। समाज की वास्तविक दशा का पता मुझे लग चुका था। सुन्दर आवरण

के भीतर का कुत्सित चित्र मैं देख चुका था। भूत से डरने पर ही वह पीछे लगता है। मैं ने आगे बढ़ने का निश्चय किया। पर मेरे आत्म सम्मान ने मुझे रोका। नलिनी के हृदय का पता नहीं। उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन हुआ या नहीं। सम्भव है वह समाज को और उसके नियमों को पूज्य दृष्टि से देखती हो, अपने पति को देवता के तुल्य मानती हो और उसे प्यार करती हो। हिन्दू बाला का प्रेम विवाह का अनुगामी होता है। बहुत कुछ सम्भव है वह मुझे भूल गई हो। मेरे तथा अपने प्रेम को बचपन की सनक समझती हो। पता नहीं उसका जीवन किस प्रकार से व्यतीत हो रहा है। हो सकता है वह अपने जीवन से सुखी और सन्तुष्ट हो। पाँच वर्ष व्यतीत हो गये उसका कुछ समाचार नहीं मिला। मेरी नई जानपहचान उसके लिये विपत्ति का कारण हो सकती है। मैं इसी उधेड़बुन में बहुत रोज़ तक पड़ा रहा पुराने समय में नायक और नायिकायें पवन और मेघों द्वारा अपने अपने सन्देशों को भेजा करती थीं। अपने अपने जी का भार हलका करती थीं। कवि सम्राट कालिदास के भी विरही यक्ष को मेघों को दूत बनाना पड़ा था। पर आज कल्ह के वैज्ञानिक युग में अब इन लोगों ने दूतत्व का कार्य छोड़ दिया है। कहीं कहीं कहाँनियों में पक्षियों

द्वारा सन्देश भेजे जाने की कथा पढ़ी है पर उस ज़माने के पक्षी आदमियों की तरह बोलते थे। नल की सुन्दरता की प्रसंशा हंस ने की थी। आज कल डाकघर इत्यादि साधन अवश्य हैं पर एक तो मुझे पता न मालूम था और दूसरे पत्र पकड़े जाने का डर था। मैं कई रोज तक असमंजस में पड़ा रहा। यदि पास ही रहता होता तो किसी न किसी प्रकार उसके मनोगत भावों का पता लगाने का प्रयत्न करता पर "सांई बसत पहाड़ पर मैं जमुना के तीर।"

बचपन में थोड़ा बहुत लिखने का शौक़ था। कुछ उपाय न होने पर मैंने एक नई योजना सोच निकाली। ६, ७ कहानियाँ लिख डालीं। प्रत्येक कहानी में घुमा फिरा कर हमारे ही प्रेम की कथा थी। पर कहानियाँ इस ढंग से लिखी गई थीं कि प्रत्येक कहानी अलग अलग मालूम पड़ती थी। मैं कोई उपन्यास लेखक न था पर हृदय की बात थी। कहानियाँ कलाविहीन होने परभी चित्ताकर्षक और मनमोहक थीं। पुस्तक का नाम मैंने रक्खा 'सन्देश' और समर्पित उसको किया जिसका चित्र मेरे हृदय पटल पर अब भी अङ्कित है और जिसको लाख प्रयत्न करने पर भी मैं मिटा न सका। समालोचनायें अच्छी हुइ। बिक्री भी खूब हुई। मुझे विश्वास

था कि यदि उधर हृदय में अब भी कुछ अनुराग बाक़ी है तो मेरे नाम का जादू रंग ले आयेगा। बात यथार्थ निकली। मेरे नये दूत ने बड़ी खूबी के साथ अपना काम किया। क़रीब चार सप्ताह के पश्चात मेरे पास एक पत्र आया।

२

नलिनी

जब मैं फर्स्टइयर में पहुँची मेरे विवाह की चर्चा चली। मैं किशोरचन्द्र को अपना पति बनाना चाहती थी। वे कालेज में पढ़ते थे। धनी न थे पर बड़े सज्जन थे। मेरे उनके बीच में एक बड़ी गहरी खांई थी। वे कायस्थ थे और मैं थी ब्राह्मण की कन्या। मैं ने डरते डरते अपनी सखी द्वारा अपने भाई से यह बात कहलाई। वे बड़े उदार प्रकृति के थे पर यह कार्य उनकी शक्ति के भी परे था। मैं कुछ न कर सकी। मेरा विवाह एक बड़े धनी परवार में हो गया। मेरे पति बड़े सज्जन थे वे मुझे खूब प्यार करते थे। मैं भी उन्हें खूब प्यार करती थी। यदि उनको मेरे पास आने में घंटे आध घंटे की देरी हो जाती थी तो मैं उनको खूब डाटती थी फिर आँसू बहा कर उनसे मिलती थी। हम लोग अक्सर चाँदनी रात्रि में खुली छत पर

एक दूसरे का मुँह देखते बैठे रहते थे। फिर धीरे धीरे मैं उनकी गोद में सिर रख कर लेट जाती थी। वे अँगुलियों से मेरे बालों को ब्यौरा करते थे। मैं धीरे धीरे सो जाती पर असफल प्रेम सदा नवीन रहता है। मैं हँसती थी पर हृदय रोता था। मैं प्रयत्न करने पर भी किशोर को न भूल सकी। कभी कभी उनका स्मरण मुझे बड़े ज़ोरों से आता पर मैं उसे दबा ले जाती थी। मैं उस प्यार को अपने नये दाम्पत्य-प्रेम में भूल जाना चाहती थी और इसी कारण अपने पति को ख़ूब प्यार करने का प्रयत्न करती थी। पर इस प्रेमाभिनय से मुझे शान्ति न मिलती थी। एक प्रकार का बोझ सा था। प्रत्येक शब्द हृदय से नहीं मस्तिष्क से कहना पड़ता था। मुझे हमेशा चौकन्नी रहना पड़ता था। मैं पिंजड़े में बन्द उस पक्षी की भाँति थी जो जंगल को प्यार करने पर भी भूख से पिंजड़े में रक्खी दाल को बड़े प्रेम से खाता है। मैं निराश हो चुकी थी। मैं सोचती थी कि किशोर विवाह कर गृह सुख में लीन होंगे मुझे भूल गये होंगे। मेरे पति कार्य वश बाहर गये हुये थे। मेरा चित्त बड़ा खिन्न था। बचपन की याद आ रही थी। किशोर के साथ किये हुये प्रेम सम्भाषण की मधुर पर कड़वी स्मृति में डूब रही थी। इसी समय एक मासिक पत्रिका में किशोर

द्वारा लिखित एक पुस्तक की समालोचना पढ़ी। कहानियों का संक्षिप्त विवरण पढ़ कर मैं चौंक उठी। एक आदमी बाज़ार पुस्तक ले आने के लिये भेजा। पुस्तक को एक साँस में पढ़ गई। जिन सम्भाषणों का याद कर रही थी उन्हें पुस्तक में पाया। एक एक शब्द मतलब से भरा हुआ था। एक एक वाक्य भेद भरे थे। मैं तिलमिला उठी। ज्ञान शून्य हो गई। कुछ देर तक उसी अवस्था में आँख बन्द किये लेटी रही। जब उठी मुझमें एक विशेष परिवर्तन हो गया था मेरे पति बाहर से आ गये थे पर बहुत कुछ चाहने पर भी इस बार मैं अपने को क़ाबू में न रख सकी। सोचती थी कि पति के आ जाने पर अपने को संभाल लूंगी पर प्रयत्न व्यर्थ हुआ। पिंजड़े का द्वार खुला हुआ है। सामने जंगल का सुख है, स्वतंत्रता है पीछे पिंजड़े का मोह है, आलस्य का आनन्द है। मैंने पिंजड़े से निकलने की ठानी। एक पत्र लिखा। मैं नहीं जानती मैंने क्या लिखा?

३

किशोर

मैं पहिले ही बतला चुका हूँ कि मैं अब समाज का एक स्तम्भ माना जाना हूँ। इस समय यदि मैं कुछ कार्य समाज के

विरुद्ध करूँगा तो क्षम्य है क्योंकि 'समरथ को नहिं दोष गोसाईं।' नियम दंड सब कमजोरों के लिये हैं, गरीबों के लिये हैं। पत्र पाकर मेरी सोती हुई स्मृति जाग उठी। उसने दबी हुई आग पर घी का काम किया इस समय मैं समाज के आगे प्रार्थी के रूप में न था विचारक के रूप में था। एक दम फैसला कर दिया जो वस्तु मेरी है वह पंडित के चार मंत्र पढ़ देने से दूसरे की नहीं हो सकती। समाज को कोई हक़ नहीं है कि एक आदमी का झोपड़ा उजाड़ कर दूसरे का महल छावे। मैं ने अन्याय का विरोध करने का निश्चय कर लिया। मैंने नलिनी को लिखा कि क्या वह अब भी मेरे पास आने को तैयार है। उसने उत्तर में लिखा 'हाँ'। उसके बाद तीन मास पश्चात नलिनी मेरे यहाँ आ गई। मेरी गृह स्वामिनी बन गई। किसी ने चूँ तक न किया। किसी ने साँस तक न ली। उसके घर में खबर पहुँची, नलिनी मेले में खो गई गंगा में डूब गई। पर सत्य बात सब को मालूम थी।

समाज के ठीकेदार चाहे मेरे ऊपर जितने नाराज़ हों, लाल पीली आँख निकालें पर सत्य कड़ुआ सत्य यही है।

बदला

बदला

ठाकुर रामपाल सिंह का अभी पुराना ढंग है। वही बैठक वही कचहरी, वही दरबार वही व्यवहार, सवेरे से दोपहर तक गाँव के मुक़दमें पेश रहते, गांव में शायद ही कोई ऐसा आदमी हो जिसका नाम लाला दीनदयाल के बस्ते के काग़ज़ों में न हो, किसी के नाम व्याज बाकी है तो किसी के नाम जमा के रुपये। दैजावन नज़राना का झगड़ा बराबर लगा रहता है। जेठ असाढ़ में कचहरी में काम बढ़ जाता, बेदख़ली, इज़ाफा इत्यादि लाखों प्रकार के मुक़दमे आते, ठाकुर साहब उनका न्याय करते और उसी के अनुसार कार्रवाई होती। किसी की मजाल नहीं थी कि ठाकुर साहब के किये हुये फ़ैसले की नुक्ता चीनी करता या उसके न मानने की हिमाक़त, ठाकुर साहब के सामने न किसी की दलील चलती और न उनके फ़ैसलों की कहीं अपील होती।

आषाढ़ के दिन थे। आकाश में बादल थे, पृथ्वी पर कीचड़। खेत बोये जा रहे थे, बांध बांधे जा रहे थे। किसानों

को खाने पीने की कुछ खबर नहीं थी। सब के मुँह से यही सुनाई पड़ता था 'कि जिसका बिगड़ा असाढ़ उसका गया बरहौ मास'। पर जाट वीरभद्र आज चार दिन से चौपाल में बराबर बैठा हुआ है। उसके खेत छिना लिये गये हैं। उसके ऊपर इज़ाफ़ा लगाया है। वीरभद्र गांव की नाक है। जिस समय वह कन्धे पर लाठी रख कर चलता है। उस समय सौ पचास को कुछ नहीं समझता। ऊँचा क़द, काले काले बड़े बड़े बाल उसके डरावने चेहरे को और भी भयानक बना देते हैं। न ऊधौ का लेना न माधौ का देना। दो बैल हैं, अपने हाथ से उनको खिलाता और उनकी पीठ ठोकता, ठाकुर साहब के खेत जोतता। सब से पहले जमा देता और राम का नाम लेता, न कभी कचहरी जाना और न अदालत करना। वीरभद्र का सब से मेल था, सब के यहां पहुँचता था, उसका कहना था कि गांव में यदि कहीं चोरी डकैती हो जाय तो ठाकुर साहब मेरे दोनों हाथ कटवालें। उसका नाम सुन कर बारह कोस तक के चोर कांपते थे। जब कोई असामी किसी प्रकार जमा नहीं देता था वीरभद्र की याद की जाती, यह आख़िरी दर्जा था, असामी को पता लगा कि वीरभद्र की तैनाती हुई और उसने रूपये इकट्ठे किये। इस साल ठाकर साहब नाराज़ हैं। उनका कहना है कि मैं इज़ाफ़ा ले लूँगा नहीं खेत छुड़ा लूँगा। वीरभद्र का कहना है कि मैं ने

कभी इज़ाफ़ा नहीं दिया जो जमा बड़े सरकार बांध गये हैं वह दूँगा, खेत मेरे हैं बड़े सरकार दे गये हैं। मुफ़्त में नहीं मिले हैं सिर बेचे के खेत हैं। गांव वालों ने बहुत समझाया। इज़ाफ़ा के रूपये अपने पास से देने को कहा पर वीरभद्र एक टेक रह गया। उसने जो एक बार कह दिया वह पत्थर की लकीर थी, पड़ोसियों ने समझाया कि तालाब में रह कर मगर से बैर नहीं करना होता। वीरभद्र ने जवाब दिया कि जब मेंड़ ही खेत को लीले तब कौन उपाय ? मैं एक पैसा अधिक नहीं दूँगा। बातों बातों में झगड़ा हो गया, ठाकुर साहब नाराज़ हो गये। खेत छुड़ा लिये गये। लाला दीनदयाल के काग़ज़ में बाक़ी निकली, वीरभद्र के बाप ने न मालूम कब कुछ रूपया और अन्न लिया था। जोड़ कर १५०) के क़रीब होता था। दोनों बैल ठाकुर ने हँका लिये। वीरभद्र बिना पलक मारते देखता रह गया। उसके दोनों हाथ टूट गये। वे बैल नहीं थे उसके भाई थे। उनको नहला कर नहाता और खिला कर खाता था। कभी दूब की सटकनी से भी उन्हें नहीं मारा था, शाम तक ठाकुर साहब के दरवाजे पर बैलों को देखता बैठा रहा। बैल आज धोये नहीं गये। उनके गोबर लगा था, शाम हो गई उनको सानी नहीं मिली, वे वीरभद्र की ओर देख देख कर बार बार हुँ करते थे, वीरभद्र से देखा नहीं गया। उसने दोनों बैल

छोड़ लिये, हांक कर मकान की ओर चल पड़ा। ठाकुर साहब को पता लगा वे लाल पीले पड़ गये। ओह, एक जाट की इतनी हिम्मत की चरही से बैल छोड़ ले जाय, उसी समय वीर भद्र के मकान की ओर चल पड़े। साथ में आठ सिपाही थे, गाँव के आदमी भी साथ हो लिये, सब के हृदय काँप रहे थे। वीरभद्र बैलों को धो कर सानी खिला रहा था। ठाकुर साहब गुस्से में भरे हुये थे, पहुँचते ही गाली देने लगे।

वीरभद्र ने कहा—ठाकुर गाली न दो, जौहर हो जायगा, कोल चमार नहीं हूँ जाट का बच्चा हूँ।

ठाकुर साहब ने गाली देते हुये कहाः—चोर कहीं का, बैल चुरा ले आया है ऊपर से कहता है गाली न दो। अभी तो गाली दिया है अब पिटवाता भी हूँ बुला जिसे बुलाना हो।

ठाकुर साहब ने अपने सिपाहियों से पीटने को कहा।

वीरभद्र का चेहरा लाल हो गया। पास ही में एक छोटी सी लकड़ी पड़ी थी उसे लेकर खड़ा हो गया। अपने को रोक कर कहा—'गाँव वालो सुन लो अब हमें दोष न देना।'

सिपाही एक पग भी आगे न बढ़े। ठाकुर साहब ने सिपाहियों से बैल छोड़ लेने के लिये कहा। वीरभद्र ने कहाः—ठाकुर साहब यह तो झूठ बात है। खेत आपके थे आपने ले लिये। बैल मेरे हैं, जान के पीछे लगे हैं। जब तक वीरभद्र

के चोला में दम है तब तक चरही से बैल नहीं छूट सकते। सिपाहियों को न बढ़ते देख ठाकुर साहब स्वयं आगे बढ़े। पं० शिवदत्त राम ने देखा कि जौहर होना चाहता है। बीच में आ गये। हाथ जोड़कर बोले—'सरकार, छोटों के मुँह नहीं लगना चाहिये। वह गँवार है। आप मकान पर चलें मैं अभी बैल लेकर हाजिर होता हूँ।' गाँव वालों ने भी पंडित जी की बात का अनुमोदन किया। सब ने ठाकुर साहब को चारों ओर से घेर लिया। ठाकुर साहब मकान की ओर लौट पड़े। चलते वक्त वीरभद्र से कहते गये कि असल जाट का बच्चा है तो मेरे मकान को आज ही छोड़ दे। यह मकान मेरा है तेरा नहीं। यदि सवेरे फिर इस मकान में देखा तो चमड़ा उधेड़ लूँगा।

घर में एक लड़का था और स्त्री। लड़का तीन मास से बीमार था उसको ज्वर आता था। बड़ा कमजोर हो गया था। ठाकुर साहब के चले जाने के बाद वीरभद्र ने अपने घर का सब सामान निकाला। दरवाजे के सामने नीम का पेड़ था वह उसके बाप का लगाया हुआ था। उसके नीचे सब सामान रक्खा। एक चारपाई बिछा कर लड़के को लिटा दिया। बुखार चढ़ा हुआ था। उसकी स्त्री ने चिल्ला चिल्ला कर आकाश सिर पर उठा लिया। वीरभद्र ने उसको डाटा। अपने दोनों बैल ले आकर अपने पास बाँध लिया। बहुत रोज की रक्खी

अपनी चिरसंगिनी लाठी को अपने पास रखकर लेट गया। रामदास कोरी उसका पड़ोसी था। उसने आकर कहा—दादा चलो घर में बरसात के दिन हैं। जब तुम्हारा घर है तब बाहर क्यों पड़े हो; घर हमारा तुम्हारा बाँटा है ?

वीरभद्र कुछ न बोला। रामदास के बड़ा हट करने पर वीरभद्र ने बिगड़ कर कहा:—'अब किसी के घर में नहीं जाऊँगा, मुझे तङ्ग न करो। यह पेड़ मेरे बाप लगा गये हैं देखें कौन मुझे इसके नीचे से हटाता है।'

रामदास लौट गया। बादल किसी का मुँह नहीं देखते। रात को बड़ी घनघोर वर्षा हुई। बेचारा बच्चा सर्दी न सह सका, चल बसा। सवेरे ठाकुर साहब के सिपाही रुपया लेने आये। वीरभद्र चुपचाप बैठा था। उसकी नजर चढ़ी थी। उसने बच्चे की लाश उठाकर बड़े जोर से सिपाही के ऊपर पटक दिया—चिल्लाते हुये कहा—'ले रुपया' लाठी उठा कर दाँत पीसते हुये बोला:—ठाकुर से कह देना—वीरभद्र जाट है। खून का बदला खून न लिया तो अपने बाप का लड़का नहीं।'

अपने स्त्री से नैहर जाने को कह एक ओर को चल पड़ा।

२

पाँच वर्ष व्यतीत हो गये। गाँव में बड़ा परिवर्तन हो गया। ठाकुर साहब की बालापुर के ठाकुर से अदावत थी। बालापुर

वालों ने ठाकुर साहब के किसानों को उठा लिया। खेत परती पड़ने लगे। पुराने किसान रह न गये। नये किसानों पर दबाव नहीं। बालापुर वालों ने ठाकुर साहब के एक गाँव की जमीन पर भी दख़ल कर लिया, ठाकुर साहब अदालत कचहरी के पक्के न थे, फ़ौजदारी का बल था, वह भी टूट गया। जमाना बदल गया। दो एक मुकदमें में बालापुर वालों से ठाकुर साहब को बुरी तौर से हार माननी पड़ी। उसी समय में ठाकुर साहब का लड़का दग़ा दे गया। बौखला कर रह गये। असमय में कोई भी साथ नहीं देता, साथी संगती एक एक कर जाने लगे बालापुर का दरबार सजने लगा, ठाकुर साहब ने एक दिन सजल नेत्र हो कर कहा :'—यदि इस समय वीरभद्र होता वह मेरा साथ कभी न छोड़ता'। कभी कभी स्मरण ठीक समय पर होता है—दूसरे रोज़ वीरभद्र आ गया। ढाँचा मात्र शेष था पर पास में दाम था। ठाकुर साहब ने बड़ी आव भगत से लिया। उसको अपना अर्दली बनाया। उनका छोटा नाती उससे बहुत परच गया। दिन रात वीरभद्र को न छोड़ता। वीरभद्र उसको खेलाता और राम का नाम लेता। दरवाजे पर बैठा रहता। पास में पैसा था, लेन देन करता। दस पाँच अपने साथी संगती बना लिये। रोज़ शाम को तालाब पर दम उड़ता। धीरे धीरे बालापुर वालों से भी परिचय हो गया।

अषाढ़ का महीना था। बड़े जोरों से वसूल तहसील का काम हो रहा था। रमपुरवा गाँव ठाकुर साहब का था पर इस साल बालापुर वाले उस पर कब्जा जमाना चाहते थे। लाला दीनदयाल वसूल तहसील करने गये थे। बालापुर वालों ने आकर रोक दिया। दीनदयाल ने ठाकुर साहब को चिट्ठी भेजी। रातोरात आने को लिखा। ठाकुर साहब हाल पाकर तड़प उठे। पुराना कड़कीला स्वभाव था। उसी समय चलने को तैयार हो गये। वीरभद्र को बुलाया, पूछा क्या करना चाहिये। पहुँच कर जमा वसूल करना चाहिये। आपके पहुँच जाने पर सब मामला तय हो जायगा। बालापुर वालों की मजाल नहीं कि आपका सामना कर सकें। ठाकुर साहब ने वीरभद्र को तैयार हो जाने को कहा। वीरभद्र ने कहा:— मुझे न ले जाइये। रात का मामला है। नदी खोह पड़ता है। नये सिपाहियों को ले जाइये। मैं बुड्ढा हुआ, कलाई में बल नहीं, आँखों से दिखाई भी नहीं पड़ता।

ठाकुर साहब ने कहा:—'नहीं वीरभद्र, नयों का काम नहीं, बस आज तुम्हारा काम है। तुम्हारी तैनाती आखिरी होती थी। आज तुम्हीं को चलना होगा।'

वीरभद्र ने बहुत बहाना बनाया। बहुत नहीं की पर ठाकुर साहब ने एक न मानी। वीरभद्र को चलना ही पड़ा। दोनों

आदमी चल पड़े। ठाकुर साहब घोड़े पर थे। क़रीब आधा रस्ता पार हो गया था। सामने एक खोह था। क़रीब तीन कोस इधर उधर बस्ती का नाम नहीं। आधी रात का समय था। उसी समय किसी ने ललकार कर कहा—'खड़े रहो'। वीरभद्र का शरीर काँपने लगा। साँस ज़ोर ज़ोर चलने लगी। उसका सारा बदन पसीने से भीग गया।—"ओह, प्रतिज्ञा पालन क्या यही है? विश्वास घात महान पाप है। प्रतिज्ञा पालन अपने बल पर होता है।" ठाकुर साहब ने पुकारा 'वीरभद्र'। क्षत्रिय का खून था। ज़ोर मार उठा, बिजली चमक गई। वीरभद्र ने लाठी संभाली। कड़क कर कहा:—'यारो, लौट जावो, आज पहरे पर वीरभद्र है।' उधर वालों ने उत्तर दिया, 'कोई हो आज बच कर नहीं जाते'। एक, दो, तीन सीटी बजी धड़ाधड़ लाठियाँ चलने लगीं। वीरभद्र ने पैतरा बदला। पुराना खिलाड़ी था। बूढ़ा हो जाने पर भी बैल हराई नहीं भूलता। एक, दो, तीन—आदमियों का ढेर लग गया। १५ मिनट तक लाठी चली। ठाकुर साहब बाल बाल बच गये वीरभद्र का सिर फूठ गया था। वह गिर पड़ा।

३

लड़ाई हुये आज चार दिन हो गये। वीरभद्र चारपाई पर लेटा है सामने ठाकुर साहब बैठे धीरे धीरे पंखी हाँक रहे हैं।

वीरभद्र ने आज आँख खोली। चारों ओर फिर से देख कर बन्द कर ली। कुछ देर में धीमे स्वर से पानी माँगा। ठाकुर ने पानी पिलाया। पूछा कैसी तबियत है। वीरभद्र ने कहा—अच्छी। कुछ देर में वीरभद्र ने ठाकुर साहब को बुला करकहा:—ठाकुर साहब, एक बात मेरे हृदय को बेधे डालती है। उसको कह कर अपने दिल का बोझा हल्का करूंगा। उस रोज का सब काण्ड मेरा किया हुआ है। मैं बड़ा पापी हूँ। मुझे मरने दीजिये।

ठाकुर साहब ने आँखों में आँसू भर कर कहा—'वीरभद्र ऐसी बात न कहो।'

वीरभद्र ने बीच ही में रोक कर कहा:—'नहीं, सुनिये, आप को पाँच वर्ष पहले की बात जब मैं यहाँ से बदला लेने के लिये कह कर गया था, याद है ?

ठाकुर साहब ने दुःख पूर्ण स्वर में कहा:—' हाँ ' !

वीरभद्र—मैंने नागपुर मिल में ५ वर्ष रह कर कठिन परिश्रम किया। मेरा विश्वास था कि बिना रुपया इकट्ठा किये मैं आपका बाल भी बाँका नहीं कर सकता। पाँच वर्ष में मेरे पास काफ़ी रुपया इकट्ठा हो गया। तब मैं यहाँ आया। आप के यहाँ नौकरी कर ली। सात आठ आदमियों को अपनी ओर मिलाया। उनको खब खिलाया जितना जब रुपया उन लोगों ने माँगा दिया। उसी समय मालूम हुआ कि बालापुर वालों

से आप से बिगाड़ है। हम लोग उनसे भी मिले। उन आद-मियों ने बालापुर वालों से भी रुपया लिया। उस रोज़ हम लोगों के सलाह से ही वह घटना घटी थी। लाला दीनदयाल ने झूठ मूठ वह चिट्ठी लिखी थी। इसी कारण मैं नहीं जाना चाहता था पर जब आपने नहीं माना तब मुझे जाना पड़ा। मुझसे विश्वास घात नहीं किया गया। पुराना ख़ून खौल उठा। बालापुर के ठाकुर भी थे इस कारण उन लोगों ने मेरा कहना नहीं माना परमेश्वर की कृपा से आप बच गये। मैं नमक हराम नहीं बना।—

उसके आँखों से आँसू गिरने लगे।

ठाकुर साहब ने कहाः—वीरभद्र तुम्हारी प्रतिज्ञा पूरी हुई। बदला चुक गया। उसी पाप के कारण मेरा इकलौता लाल मुझे छोड़ गया। अब तुम उसी के जगह पर हो।—

ठाकुर साहब की आँखों से आँसू बहने लगे। इतने में ठाकुर साहब का नाती चाचा चाचा कहता आ गया। वह चार रोज़ से बराबर रो रहा था। ठाकुर साहब ने उसे उठा कर वीरभद्र की छाती पर लिटा दिया। बोले—लो यह तुम्हें सुपुर्द है चाहे मारो चाहे जिलाओ। मुझ बूढ़े को मार कर क्या पाओगे।

वीरभद्र ने उसे छाती से लगा कर कहाः—'अधिक लज्जित न करिये'।

तब नहीं अब

तब नहीं अब

हाल ठसाठस भरा हुआ था। विश्वविद्यालय में वाद-विवाद था। प्रताप रामनाथ का प्रतिद्वन्दी था। रामनाथ की विश्वविद्यालय में धाक थी। उसके मनोहर पद-विन्यास अकाट्य प्रमाण और बोलने के ढंग की सभी तारीफ़ करते थे। पर प्रताप में दृढ़ता थी, गम्भीरता थी और थी पक्की लगन। शब्द उसके हृदय से निकलते थे, और श्रोताओं के हृदय में तीर की भाँति चुभ जाते थे। उसको प्रथम पारितोषिक मिला। चंचलता दृढ़ता के सामने न ठहर सकी। बधाइयों की धूम मच गई। प्रताप को बाहर निकलना मुश्किल हो गया। वह खड़ा अपने मित्रों से हाँथ मिला रहा था। एक बालिका ने उसको सफलता पर बधाई दी। प्रताप ने उसको धन्यवाद दिया। प्रताप को स्मरण आया यह वही बालिका थी जो बराबर उसकी ओर देख रही थी। प्रताप को मालूम हुआ कि इसी ने प्रोफ़ेसर की बिदाई के

अवसर पर गाना गाया था जिसकी स्वर लहरी अब भी उसके कानों में गूँजा करती है। उसने चारो ओर देखा पर वह बालिका फिर न दिखलाई पड़ी। वह उदास मन से अपने साथिओं के साथ छात्रालय की ओर चल पड़ा। उसके साथियों के चेहरे खिले हुये थे और मस्तक उठे हुये। प्रताप थका था जाकर कमरे में लेट गया। उसका हृदय बेचैन था। रह रह कर उसके कानों में पूर्व परिचित स्वर सुनाई पड़ता था "कर गये थोड़े दिन की प्रीति"। वह सो गया। स्वप्न में भी वही स्वर सुनाई पड़ने लगा।

प्रताप को अपने प्रेम पात्री का परिचय प्राप्त कर लेना बायें हाँथ का खेल था। उसको जाति, पाँति, मत मतान्तर से मतलब न था। वह भारतीय था और उसका धर्म था राष्ट्र सेवा। इतना पता उसके लिये बहुत काफ़ी था कि वह स्थानीय 'महिला विद्यालय' में पढ़ती है। यह जान कर उसको अपार आनन्द हुआ कि वह कविता भी करती है और साहित्य से उसका अनुराग है। पर परिचय पाने पर भी वह अभी इस पथ का नवीन पथिक था। प्रताप का प्रेम उसका था। वह नहीं जानता था कि वह अपने विचार अपनी प्रेयसी तक किस प्रकार पहुँचाये। उसने बहुत से उपन्यास और कहानियाँ पढ़ीं थीं। यदि कोई योगी बनकर गया था तो कोई नौकर। यदि किसी ने दिवाल

फाँदने की हिम्मत की तो किसी महाशय ने फाटक के सिपाहियों के मिलाने का साहस। यदि एक खोञ्चा लेकर दाखिल हुये तो दूसरे हज़रत मोची का सामान लेकर हाज़िर। यदि किसी ने अपने पत्रों को मिठाई के दोनों में रखने का साहस किया तो किसी ने लेडी शू के भीतर। पर प्रताप नीच न था। वह आवश्यकता पड़ने पर शेर से लड़ सकता था पर उसको फसाने के लिये जाल नहीं बिछा सकता था। उसका ध्येय मिलन न था समर्पण था वह पंखा कुली होकर जाना नहीं चाहता था।

प्रताप के छात्रालय ने कवि सम्मेलन करना निश्चित किया। वह मंत्री था। धूमधाम से तैयारी होने लगी। महिला विद्यालय में वह स्वयं निमंत्रण पत्र लेकर गया। ठीक समय पर कार्य आरम्भ हुआ। लेडी प्रिंसपल भी अपने वचनानुसार छात्रालय की बालिकाओं को लेकर पहुँच गई थीं। विषय था "उपहार"। कवियों ने विचित्र विचित्र उपहार भेजना प्रारम्भ किया। प्रताप ने लेडी प्रिंसपल से बालिकाओं का नाम माँगा। केवल एक बालिका ने कविता बनाई थी। बालिका ने प्रार्थना की कि उसकी कविता कोई दूसरे सज्जन पढ़ दें। पर कालेज के लड़कों में इतनी दयालुता कहाँ। सभापति ने पुकारा, 'श्रीमती हेमन्त कुमारी जो।' संकोच,

लज्जा और भय की एक प्रतिमा आगे आई। किसी की आँख ऊपर न उठी। प्रकाश जब तक दूर रहता है तभी तक प्राणी उसकी ओर देख सकता है। प्रताप का चेहरा खिला हुआ था। हेमन्त ने कविता पढ़ना आरम्भ किया। उसके एक एक शब्द प्रताप के हृदय पर अंकित होते जाते थे। सहसा प्रताप का मुँह एक दम पीला पड़ गया। उसका मस्तक नीचे को झुक गया। उसने अपने को सँभालने का बहुत प्रयत्न किया पर सँभाल न सका। उससे कविता पढ़ने को कहा गया। श्रोताओं का हृदय धड़कने लगा। उन्होंने थपोड़ी बजाकर उसका स्वागत किया। महिला समुदाय भी अभी तक ऊँघते रहने पर भी उसी के लिये डटा था। पर प्रताप ने अपनी कविता सुनाने से इन्कार कर दिया। उससे बहुत कुछ प्रार्थना की गई पर वह एक टेक रहा। जिसे भँवर ने कली समझा था वह बिखरा फूल निकला। सम्मेलन खतम होने पर प्रताप जा कर अपने कमरे में लेट गया। वही विचार, वही भाव, वही स्वर बार बार उसके मस्तिष्क में चक्कर लगाने लगे। उसको ऐसी प्रचण्ड वेदना कभी नहीं हुई थी। उसके कानों में गूंज रहा था।

"कली मसल दी निर्दय विधि ने विकसित होने के पहले"

× × ×

कविताओं का निर्णय हो गया। महिला सुवर्ण पदक हेमन्त कुमारी को मिला। प्रताप ख़ुशी से उसे लेकर महिला विद्यालय पहुँचा। लेडी प्रिंसपल से मिला। वे बड़ी प्रसन्न हुईं। हेमन्त कुमारी को बोलाया। वह खेल रही थी। टेनिस रैकेट हाँथ में लिये हुये दौड़ती हुई आई। चेहरे पर पसीने की बूँदें थीं, साँस ज़ोर ज़ोर से चल रही थी। वस्त्र अस्त व्यस्त थे। प्रताप को देखकर शरमा गई। एक पेड़ की आड़ में खड़ी हो गई। लेडी प्रिंसपल के बार बार पुकारने पर रुमाल से पसीना पोंछ कपड़े ठीक कर रैकेट पेड़ के पास रख लजाते हुये आगे आई। लेडी प्रिंसपल ने पदक को हेमन्त कुमारी के अंचल में लगा दिया। पदक में एक ओर उसका चित्र था। नीचे लिखा था 'हेमन्त कुमारी' और दूसरी ओर देने वाले सज्जन का। चित्र के नीचे लिखा था 'प्रताप'। प्रताप की आशा पूर्ण हुई। दोनों के चित्र साथ ही साथ लटकने लगे। लड़कियों का एक दल पदक देखने को टूट पड़ा। प्रताप ने वहाँ ठहरना उचित न समझ अपनी साइकिल उठाई। बेचारी हेमा की साड़ी फटते फटते बची।

२

भारत भर में सेवा का भाव ज़ोरों पर था। जगह जगह सेवा समितियाँ क़ायम हो रहीं थीं। सब के हृदय में सेवा के

भाव भरे थे। समय के इस प्रवाह ने स्त्री जाति को भी अछूता न छोड़ा। वे भी आगे बढ़ीं। 'महिला सेवक दल' की स्थापना हुई। महिला विद्यालय उसका केन्द्र था। इन दिनों प्रताप के कालेज के 'सेवक दल' की बड़ी धूम थी। दूर दूर तक उसका नाम था। लेडी प्रिंसपल ने प्रिंसपल को लिखा कि यदि प्रताप सिंह जी कुछ समय 'महिला सेवक दल' को दे सकें तो वह उनका बड़ा अभारी होगा। पिंसपल ने प्रताप से कहा। उसने सहर्ष स्वीकार कर लिया। चार बजे कालेज से छुट्टी होते ही वह वहाँ पर पहुँच गया। हेमन्त कुमारी भी 'दल' में थीं। उसको देखते ही प्रताप के शरीर में बिजली चमक गई। हेमा ने 'प्रताप भैय्या' कह कर पुकारा। शब्दों ने हृत्तन्त्री पर चोट की वह मधुर झंकार कर उठी। वह प्रेम पूर्वक सब बालिकाओं को शिक्षा देने लगा। हेमा उसकी ओर अधिक झुकी हुई थी। उसके साइकिल की हवा निकाल देना और खूब बिरझा कर अपने हाथ से हवा भरना तो उसका दैनिक कार्य था। प्रताप भी उससे विशेष अनुराग करता था। समान जल वायु पाकर पौधा बढ़ता गया। धीरे धीरे प्रताप की ट्रेनिंग पूरी हो गई। महिला सेवक दल ने प्रताप की निरीक्षण में खूब उन्नति की। दल में क़रीब ५० बालिकायें थीं। सब में अदम्य उत्साह और दृढ़ चरित्र की भावना थी। हेमन्त कुमारी

कप्तान थीं। प्रताप की शिक्षा थी 'हृदय की प्रवृत्तियों पर शासन रखना।'

प्रताप ने विदा माँगी। लड़कियों ने पार्टी (भोज) दिया। अपने प्यारे भैय्या, पूज्य गुरु को निमंत्रित किया। बालिकाओं ने उसे अभिनन्दन पत्र दिया। अभिनन्दन पत्र हेमन्त कुमारी ने पढ़ा था। उसने सूक्ष्म में उत्तर दिया। सेवा का मर्म समझाया। हेमा ने बालिकाओं की ओर से प्रताप को हार पहनाया। प्रताप ने लाखों पाया। उसका हृदय गद्‌गद हो गया। उसे अपने इस जीवन में इतनी सफलता की आशा न थी। प्रताप को पहुँचाने के लिये साथ में बालिकायें चलीं। बहुत रोकने पर भी वे न रुकती थीं। प्रताप ने हेमी से पूछा "क्यों हेमो मुझे भूलेगी तो नहीं" पर बीच ही में उसका गला भर आया। हेमी भी अपने को रोक न सकी। बहुत देर के रोके हुए आँसुओं का बाँध टूट गया।

३

माघ मेले के दिन थे भीड़ अधिक थी। प्रताप को दम लेने का भी अवकाश न था। स्वयं सेवक अपना जी होम कर कार्य कर रहे थे। स्त्रियों बच्चों की देख रेख और भोजन का प्रबन्ध महिला सेवक दल पर था। चार बजे प्रातः काल से लेकर प्रताप के वीर सैनिकों को पानी में खड़े होकर काम करना पड़ता

था। पर किसी के चेहरे पर घबराहट, भय, ऊब और निराशा के चिन्ह भी न थे। सब के हृदय में जोश और उत्साह था। प्रताप केवल कैम्प में बैठ कर काम न करता था जहाँ कहीं तनिक भी ख़तरा हुआ प्रताप उपस्थित। वह अपने १५ सेवकों को लिये हुये किले की ओर जा रहा था। एकाएक दारागंज की ओर से Danger whistle की आवाज़ आई, प्रताप चौंका। उसी ओर आगे बढ़ा। आवाज़ साफ़ सुनाई पड़ने लगी, पुल टूट गया। प्रताप बात की बात में घटनास्थल पर पहुँच गया। स्थिति बड़ी भयानक थी। भीड़ बराबर आती जाती थी। बड़ी मुश्किल से प्रताप भीड़ को थाम पाया। एक प्रौढ़ा स्त्री अपने तीन वर्ष के बालक को लिये वहीं पर खड़ी थी धक्का लगते ही बालक हाँथ से छूट कर गङ्गा की गोद में आ गिरा। स्त्री कूदने ही वाली थी, इतने में एक स्वयं सेवक ने उसे पकड़ लिया, वह ज़ोर से चीख़ कर मूर्छित हो गई। प्रताप पल मारते मारते दरिया में दिखाई पड़ा। वहीं पर डूब गया। करीब २० गज़ की दूरी पर बालक को लिये हुये उतराया। अपनी जान पर खेल कर उसने बालक की जान बचाई। उसके बायें हाथ में कूदते समय एक पीपे की कील लग गई थी, ख़ून बराबर वह रहा था। वहाँ का समुचित प्रबन्ध कर वह बच्चे और स्त्री को लेकर बाँध पर आया। बच्चे को अस्पताल में रख वह अपने कपड़े

बदलने के लिये कैम्प में गया। हेमी मिली, उसके हाँथ से खून बहते देख वह व्याकुल हो गई। उसने घाव धोया और अपने अंचल से एक पट्टी फाड़ कर घाव पर बाँध दिया। न मालूम क्यों बाँधते समय हेमा के हाँथ काँप उठे। प्रताप के भी रोयें खड़े हो गये। खाने का सामान था, हेमा ने कहा चलो खा लो। प्रताप ने हँसते हुये कहा, पूड़ियाँ खिलाते खिलाते तुम मुझे बीमार कर दोगी। आज तो चावल दाल खाने की इच्छा हो रही है। हेमा अच्छा कह कर चली गई। जा कर अपने कमरे में स्टोव जलाया और आध घन्टे में चावल दाल बना कर प्रताप को ढूँढ़ने चल पड़ी। वह प्रधान जी से बातें कर रहा था। हेमी भी वहीं पहुँच गई। प्रधान जी ने हेमी के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा तू इतना काम क्यों करती है बीमार हो जावेगी। हेमी कुछ न बोली। प्रधान जी ने दोनों को सप्रेम भोजन करने जाने की अनुमति दे दी। प्रताप हेमा के खेमा में गया। हेमा ने प्रताप को बैठा कर भोजन परोसा। उसको इससे अधिक क्या चाहिये था। भोजन करते हुये उसने कहा, "आज का भोजन बड़ा स्वादिष्ट है।" हेमा ने मुस्कुराते हुए कहा, "यह नहीं कहते जोरों से भूख लगी है" बातों बातों में उसने कहा, "अब तो हम दोनों की ज़िंदगी समान रूप से कटेगी। दोनों एक ही पथ के पथिक हैं"। प्रताप ने कहा,

"हाँ एक ही पथ के"। इतने में Call whistle बजी। प्रताप हेमा के साथ प्रधान जी के पास चला आया। उन्होंने कहा, 'प्रताप आज तुम बहुत थके हो कैम्प का प्रबन्ध करो मैं बाहर जाता हूँ'। उन्होंने ट्रूप को मार्च का आर्डर दे दिया। प्रताप हेमा के साथ आफ़िस में चला गया। Night duty में महिला विभाग के लिये प्रताप ने हेमा से नाम पूछा। हेमा ने नाम बतला दिये। दूसरा पहरा आज हेमा का था। प्रताप के हृदय में एक बहुत रोज़ की दबी प्रवृत्ति जाग उठी। वह चंचल हो उठा। हेमा की ओर देखा वह एक पत्र पढ़ रही थी। इतने में छुट्टी पाकर लड़के बाहर से आ गये वह भोजन का प्रबन्ध करने चली गई।

प्रताप का हृदय रह रह कर मचल उठता है। कोई अज्ञात भाव अनायास उसे क्षुब्ध कर रहा है। तर्क और विवेक की दीवालें उस प्रबल वेग के सामने धड़ाधड़ गिर रही हैं। पर आत्मवीर प्रताप उन्माद के झोंकों के सामने सर झुकाने को तैयार नहीं है। वह जानता है उसका प्रेम अपूर्ण है। क्यों ? यह वह नहीं जानता। प्रताप जानता है हेमी उसे प्यार करती है। पर उसे सन्तोष नहीं। क्यों ? वह नहीं जानता। कुछ भी हो प्रताप उस दुविधा में नहीं रहना चाहता। प्रताप और हेमी के बीच में एक आकाश का धुन्ध है, कुहरा है, बादल

है। प्रताप उसे मिटाना चाहता है। उसने सोचा क्या हेमी मुझे प्यार करती है। हृदय ने उछल कर कहा हाँ दिमाग़ ने दलील की कैसे? उत्तर मिला 'वह मुझे देख कर प्रसन्न होती है, मेरी बातें ध्यान से सुनती है, अपनी बातें शौक से कहती है। मेरी हितकामना और सेवा करती है। मुझे दुखी देख कर दुखी होती है और सुखी देख कर सुखी'। अविश्वासी मस्तिष्क ने कहा, "क्या यह सभ्यता, उदारता और कृतज्ञता से सम्भव नहीं है"। प्रताप के लिये इतना ही काफ़ी नहीं है। प्रताप ने हृदय को तोला, अब भी उसमें बल था। उसने हेमी से पूछने का निश्चय किया, हृदय ने गवाही दी कोई हर्ज नहीं।

घड़ी में १२ बजे थे चारो ओर घोर शान्ति थी। प्रताप महिला-विभाग की ओर चल पड़ा। कुछ दूर पर कोई घूमता हुआ नजर आया। प्रताप ने कड़क कर पूछा Number please आवाज़ आई Number 2. प्रताप निधड़क उसके पास चला गया। हेमा ने प्रताप को सैलूट किया। उसने हँस कर कहा मैं भी साधारण ड्यूटी पर ही हूँ।

प्रताप ने कुछ ठहर कर कहा, "कैसी सुन्दरता है हेमी!" हेमा ने हँसते हुये कहा, 'बड़ी सुन्दर कहीं कवि जी को कविता बनाने की तो नहीं सूझी। एकान्त स्थान, दरिया का किनारा, चाँदनी

रात्रि, अठलाती हुई वायु सब योग उपस्थित हो गये हैं। प्रताप ने कहा, 'हेमा चाहे मैं तुमको क्षमा करदूं पर कविता क्षमा न करेगी तुम उसके मुख्य सहायक का नाम भूल गईं। सुनो 'एकान्त स्थान,' 'दरिया का किनारा,' 'चाँदनी रात', 'मदमाती वायु' और सामने हेमन्त कुमारी। अब, बताओ यहाँ कविता न बनेगी तो क्या गुदड़ी बाजार में बनेगी' ?

हेमी शरमा गई। सर नीचा करके बोली, "अच्छा तो बनाइये कविता"। प्रताप ने भाव पूर्ण शब्दों में कहा, 'हेमी मैं स्वयं एक मनोहर काव्य बन रहा हूँ केवल अन्तिम पद बाकी है।'

"उसे भी बना डालिये अथवा बन जाइये," हेमी ने ज़रा संकोच के साथ कहा।

प्रताप "वह मेरे हाँथ में नहीं है।"

हेमी—'तो किसके हाँथ में'।

प्रताप—'तुम्हारे'।

हेमी—'मेरे'।

प्रताप—'हाँ'।

हेमी—'किस प्रकार'।

प्रताप—'मैं नहीं जानता'।

हेमी—'क्यों नहीं जानते'।

प्रताप—'सोचा नहीं'।

हेमी—'क्यों नहीं सोचा'।

प्रताप—'क्या प्रेम में भी सोचना होता है'।

हेमी—'क्या प्रेम भी अपूर्ण होता है'।

प्रताप की, विख्यात वक्ता प्रताप की ज़बान बन्द हो गई। थोड़ी देर सोच कर बोला—'क्या सामाजिक नियम हमारे योग में बाधक नहीं है'।

हेमी—कहाँ ? मैं तो नहीं देखती। हम लोग कितनी दूर तक आगे बढ़ आये हैं क्या कभी सोचा है ? क्या किसी ने कभी हमारी ओर अंगुली उठाई।

प्रताप अपनी दुर्बलता को अधिक देर तक न छिपा सका। व्यग्र होकर पूछा।

'हेमी तू मुझे क्या समझ कर प्यार करती है ?

हेमी—वही जो कृष्णा ने कृष्ण को समझ कर किया था। भाई, प्यारा भाई, और तुम मुझे क्या समझ कर प्यार करते हो ?

प्रताप वहाँ से हट चुका था। तीर की भाँति बढ़ता हुआ गंगा के नीचे तट की ओर जा रहा था। हेमन्त ने घबड़ा कर उसका पीछा किया पर वह आँखों से ओझल हो गया। गंगा के एकान्त तट पर निस्तब्ध खड़ा होकर वह अपने जीवन की

आलोचना करने लगा, 'मेरा प्रेम अपूर्ण क्यों है ? आखिर मैं चाहता क्या हूँ ? हेमी मुझे प्यार करती है। प्राण-प्रण से प्यार करती है इसमें तिल मात्र का सन्देह नहीं। और अधिक चाहिये ही क्या ? हाँ समझ गया मैं धोखे बाज़ हृदय के काले धब्बे देख रहा हूँ। प्रेम की पवित्र आग में लालसा का धुआँ है। स्नेह के निर्मल आकाश में वासना का बादल है। अनुराग के उज्जवल प्रकाश में मोह का अन्धकार है। पर मुझे अपनी मलीनता द्वारा उसके पवित्र हृदय को कलुषित करने का कोई अधिकार नहीं है। हृदय तुम धो डालो अपने कुत्सित वासना की कालिमा को। और यदि ऐसा नहीं कर सकते तो चलो पतित पावनी माँ गंगा की गोद में। ढोंग न करो, ढोंग सब से बढ़ कर पाप है। जो तुम्हारे ऊपर विश्वास रखता है उसको धोखा न दो। हृदय तुम मेरे लिये हो मैं तुम्हारे लिये नहीं हूँ, मैं तुम पर शासन करूँगा तुम मुझ पर नहीं'।

"भैय्या प्रताप" हेमी ने प्रताप के चरणों में लिपट कर कहा। प्रताप ने उसे उठा लिया। नयनों से आँसुओं की धारा बह रही थी। उसने पूछा 'हेमी तू यहाँ कैसे आई' ?

हेमी ने रोते रोते कहा,—'भैय्या जब तुम आंखों से ओझल हो गये मैं व्याकुल होकर रोने लगी। फिर किसी

अनिश्चित अनिष्ट से मेरा कलेजा काँपने लगा। मैं किनारे किनारे उसी ओर को बढ़ी और तुम्हारे पास आ पहुँची। तुम्हें मेरी क़सम, साफ़ साफ़ बताओ किस अनर्थ का अलोचन कर रहे हो। प्रताप ने सरल अभिमान के साथ कहा, 'हेमी, प्यारी हेमी, हृदय में व्यर्थ की आशंका मत करो। प्रताप कुछ भी हो कायर नहीं है। पाखंडी नहीं है। संग्राम हो चुका विजय मिल चुकी। देखती हो माँ गंगा की पवित्र धारा ?

हेमी ने आंसू पोछते हुये कहा, 'हाँ देखती हूँ'।

प्रताप—'बस इसी धारा के समान हमारे शुद्ध स्नेह का स्रोत बह रहा है। और देखती हो इस धारा के ऊपर वायुमंडल में क्या है' ?

हेमी—'हाँ देखती हूँ उड़ती हुई भाप का कुहरा छाया हुआ है'।

प्रताप—'बस इसी कुहरे के समान मोह के अन्धकार में प्रेम का स्रोत छिपा रहता है'।

हेमी—'तो तुमने उस को देख लिया'।

प्रताप—'हाँ देख लिया और तब नहीं अब तुम मेरी प्यारी बहन हेमी और मैं तुम्हारा प्यारा 'भैय्या' प्रताप हूँ।

मर्यादा की रक्षा

मर्यादा की रक्षा

चन्दा और प्रतिभा दोनों साथ ही साथ कन्या पाठशाला में पढ़ती थीं। दोनों साथ ही रहतीं और खेलतीं। दोनों में गाढ़ी मित्रता थी। प्रतिभा का अधिक समय चन्दा के यहाँ व्यतीत होता और चन्दा का प्रतिभा के यहाँ। दोनों साथ साथ बाग को जातीं और मनमानी उधम मचातीं। दोनों में बड़ी बड़ी बातें होतीं दोनों खूब ऊँचे ऊँचे उड़ान भरतीं। दोनों खुश थीं और थीं अपने हृदय की आप स्वामिनी। दोनों सखियों का हृदय प्रेम परिपूर्ण था। एकान्त में किसी का ध्यान नहीं, सखियों में किसी की चर्चा नहीं।

संसार गति शील है। प्रतिभा की अवस्था १६ वर्ष की हो चुकी थी। कली खिल गई थी। सौरभ चारों ओर फैल रहा था। भवरों की कमी न थी पर बागवान चतुर था। प्रतिभा की शादी प्रयाग के एक युवक से तय हुई। युवक का नाम था ब्रजराज। कालेज में पढ़ता था। प्रकाश उसका सबसे प्यारा

मित्र था। विवाह के प्रबन्ध का भार उसी के ऊपर था। बारात ठीक समय पर पहुँची। सकुशल सब बातें समाप्त हो गईं। चन्दा को दम मारने का अवकाश न था। कभी वह भंडार घर में जाती और कभी दौड़ती हुई प्रतिभा के पास पहुँचती। ब्रजराज को देखा, बड़ी सन्तुष्ट हुई, अपनी सखी के योग्य पाया। साथ में प्रकाश भी था। दोहरा बदन, उन्मत ललाट। तना हुआ सीना, विशाल नेत्र। चाल में गम्भीरता थी और चेहरे पर ओज। चन्दा ने प्रतिभा से पूछा 'सखी, 'वे जीजा के साथ कौन हैं'? प्रतिभा हँस पड़ी विनोद से कहा, "तेरे जीवन सर्वस्व"। चन्दा का चेहरा गम्भीर हो गया। प्रतिभा ने उसको समझाते हुये कहा, "तू चिन्तित न हो मैं प्रयाग पहुँच कर इनके बारे में तुझे लिखूँगी।"

बिदा का समय आया। चन्दा अपनी प्यारी सखी के सजाने में व्यस्त थी। एकाएक उसको हार का ख्याल आया। हार गूंथने में बड़ी प्रवीण थी। सवेरे का समय था वह बाग की ओर दौड़ी। एक जूही के पेड़ से वह सुन्दर सुन्दर फूल चुन कर तागे में पिरोती जाती थी और हार गूँथती जाती थी। इतने में प्रकाश उधर से निकला। वह घूमने आया था। चन्दा सहम गई पर उसकी आँखें एक दम प्रकाश की ओर दौड़ गईं। प्रकाश ने भी चन्दा को देखा। यदि फिल्म स्वच्छ हो, फोकस

ठीक हो, तो तस्वीर खींचने के लिये एक पल का समय बहुत है। चन्दा ने हार वहीं पर फेंक दिया और भाग गई। प्रकाश ने हार उठा लिया वह अधूरा था।

२

प्रकाश प्रतिभा को भाभी कहता था। ब्रजराज को वह अपने बड़े भाई के समान मानता था। प्रतिभा को अपने सखी की बात न भूली उसने प्रकाश का पूरा परिचय लिखा और अपना रिस्ता भी बताया। चन्दा प्रतिभा के किसी पत्र में भी अपने देवर से मेरा सादर प्रणाम कहना खिलना न भूलती थी। प्रतिभा भी इस सन्देश को खूब चढ़ा बढ़ाकर इतवार के दिन प्रकाश से अवश्य कहती थी। उसका इतवार क़रीब क़रीब ब्रजराज के यहाँ ही बीतता था। प्रकाश ने वसन्तोपहार छपाया। उसमें एक पंक्ति थी :—

"विस्मृति के बादल से छनकर छिटक रहा है चन्द्र प्रकाश"

प्रतिभा ने चन्दा के पास भी वसन्तोपहार भेजा। अपने पत्र में कविता का मनमाना अर्थ निकाल कर लिखा। प्राप्ति स्वीकार और धन्यवाद आना स्वाभाविक था सातवें रोज प्रतिभा के पत्र में एक पत्र आया। प्रकाश ने इच्छा रहते हुये भी इस मामले को आगे बढ़ाना उचित न समझा। पर प्रतिभा कब मानने लगी। पत्र का उत्तर न देना घोर असभ्यता बताया।

चन्दा को अब प्रतिभा के पत्रों का मूल्य बहुत अधिक बढ़ गया। एक बार बाँध टूटने पर प्रवाह का रोकना असम्भव हो जाता है। बिना परिणाम सोचे दोनों अगाध सागर में कूद पड़े।

बुधवार का दिन था। चन्दा के पास प्रतिभा का पत्र आया। वह पत्र बार बार पढ़ती थी। कुछ सोचने लगी। "मर्यादा, प्रेम, प्रेम का मर्यादा के साथ क्या सम्बन्ध ? मैं उनको चाहती हूँ। वह मेरे हैं। मैं उन्हें प्यार करती हूँ। क्यों न मिलूं ? अवश्य मिलूंगी। पुरुषों का हृदय कठोर होता है। कितना करने पर प्रयाग जाने की आज्ञा पाई अब इनसे न मिलूंगी। फिर किसको मालूम ही होगा।" चन्दा सोचते सोचते सो गई। उसकी भाभी उसके कमरे में आई। उसको जगाने ही वाली थी कि उसकी नज़र पलँग पर पड़े पत्र पर पड़ी। पहले तो उसने उसे प्रतिभा का पत्र समझा पर नाम देखते ही झझक उठी। एक साँस में पत्र पढ़ गई।

प्यारी चन्दा,

तुम्हारे प्रयाग आने का समाचार मालूम हुआ। दुख सुख दोनों हुआ। सुखतो तुम से मिलने का, अधूरे हार को पूरा कराने का और दुख इस बात का कि बिना परिणाम सोचे हम लोग आगे बढ़ते जाते हैं पता नहीं उसका परिणाम क्या होगा। चन्दा कर्तव्य और प्रेम का घना सम्बन्ध है। इसके बारे में

मैं तुम्हें कई बार लिख चुका हूँ। तुम से एक बार फिर कहूँगा कि यदि मिलने पर अनिष्ट की आशङ्का हो तो मिलने का प्रयत्न न करना। मैं तुमको प्यार करता हूँ या नहीं इसको समय बतलावेगा। हाँ इतना कह सकता हूँ कि हृदय पटल पर जो चित्र खिंच गया है वह अमिट है आज इतना ही। शेष कुशल।

तुम्हारा ही

प्रकाश

पत्र पढ़ कर वह कुछ देर तक वहीं चुपचाप खड़ी रही, एका-एक वहाँ से जा कर बिना कुछ सोचे विचारे पत्र को अपने पति के हाँथ में रख दिया। सूर्यबली प्रयाग में पढ़ता था। प्रकाश को जानता था। वह क्रोध से काँपने लगा। चन्दा को फटकारा पोस्ट मास्टर से अपने यहाँ के पत्रों को उसी को देने को कहा। चन्दा का प्रयाग जाना बन्द हो गया। उसकी विचित्र दशा थी। वह अपने कमरे में जाकर खूब रोई। प्रतिभा को सविस्तार हाल लिखा। पत्र पाकर वह बहुत घबड़ाई। प्रकाश से सब हाल कहा। उसने हँसते हुये कहा, "यह कोई अनहोनी तो नहीं हुई। इसकी तो मुझे पहिले ही से आशंका थी।" प्रतिभा को प्रकाश का हँसना अच्छा न लगा, वह दूसरी ओर मुँह फेर कर बैठ गई। सोचने लगी पुरुष बड़े स्वार्थी होते हैं। प्रकाश ने हँसते हुये कहा, "भाभी अभी तुम

इस कला में निपुण नहीं। तुम्हें रूठना नहीं आता। कुछ रोज़ अभ्यास करो। पर पहिले कुछ खाने को ले आओ भूख लगी है।" प्रतिभा एक कटोरा में कुछ मीठा ले आई। वह वहीं पर बैठ गई। तीनों में बहुत देर तक सलाह होती रही। इसके एक माह के भीतर प्रतिभा अपने नैहर चली गई।

३

सूखते धान में पानी पड़ा। सूर्यबली का सेन्सर फ़ेल कर गया। उसने चन्दा के विवाह की जल्दी मचाई एक जमीन्दार के यहाँ चन्दा की शादी तय हो गई। चन्दा के चारों ओर अन्धकार था। उसके अँधेरे जीवन में केवल प्रतिभा एक उजेली रेखा थी। वह उसे बराबर धैर्य दिया करती थी। धीरे धीरे विवाह का दिन आ गया। चन्दा ने प्रकाश को जो पत्र लिखा था उसका भी उत्तर आ गया। उत्तर पढ़ कर उसने एक लम्बी साँस ली। प्रकाश ने उसको विश्वास दिलाया था कि शादी के बाद भी वह उसको वैसा ही प्यार करता रहेगा। वह प्रतिभा से लिपट गई, बोली, "बहन अब बताओ मैं क्या करूँ, जिन पर गर्व था वे इतना सूखा जवाब देते हैं।" प्रतिभा ने उसको धीरज देते हुये कहा "सच्चा प्रेम कभी असफल नहीं होता। घबड़ा न ! मैं प्रकाश को जानती हूँ। उसने तेरे ख्याल से ऐसा लिखा है। व्यर्थ में रोने में समय नष्ट न कर तू शीघ्र एक पत्र

जो तेरे जी में आवे लिख, मैं भी लिखती हूँ।" प्रतिभा ने प्रकाश और ब्रजराज को पत्र लिखा कि यदि तुम लोग कल तक यहाँ न आओगे तो चन्दा को इस संसार में न पाओगे और उसके जीवित न रहने पर मेरा जीना असम्भव है। चन्दा ने इतना ही लिखा कि एक बार फिर से प्रार्थना है कि इससे उबारिये पर जैसी आप की इच्छा हो। आप के प्रेम का ऊँचा सिद्धान्त मेरे समझ के परे है। सम्भवतः इस अवस्था का यह अन्तिम पत्र होगा। प्रतिभा ने एक आदमी द्वारा पत्र ब्रजराज के पास भेज दिया।

पत्र पाते ही ब्रजराज प्रकाश के पास बोर्डिङ्ग में गये। प्रकाश को जगाया। उसने कहा, "आखिर इस में चिन्तित होने की बात क्या है? तुम इतने व्यग्र क्यों हो रहे हो।" ब्रजराज ने बिगड़ कर कहा, "प्रकाश तुम्हारा लड़कपन अभी तक नहीं गया। तुम प्रेम को खेल समझते हो। तुम कायर हो, अपनी कायरता को छिपाने के लिये व्यर्थ में मर्यादा का ढ़ोंग रचते हो। उधर तो एक प्राणी के जीवन मरण का प्रश्न है और इधर आप कहते हैं क्यों चिन्तित हो। उसको इस स्थित में ले आने के लिये उत्तरदाता कौन है? कभी इस पर भी सोचा है?" प्रकाश ने ब्रजराज का हाँथ पकड़ कर कहा, "भैय्या बिगड़ो नहीं। तुम मेरा मतलब न समझे। मेरा मतलब यह था कि जहाँ पर साधारण दूती की पैठ हो जाती है मामला बहुत कुछ आसान हो

जाता है। यहाँ पर तो स्वयं भाभी दूती का काम कर रही हैं तब भला सफलता में क्या सन्देह हो सकता है।" वह ब्रजराज को लेकर फील्ड में चला गया। बड़ी देर तक दोनों में बातें होती रहीं। दूसरे रोज थैले में कुछ रूप बदलने का सामान लेकर प्रकाश ब्रजराज से स्टेशन पर मिला।

४

रात्रि को बारात आ जावेगी सबेरे शादी का मुहूर्त्त है। प्रतिभा बड़ी घबड़ा रही थी इतने में ब्रजराज आ गये। दरवाज़े पर कोई न था। माँ इत्यादि चन्दा के यहाँ गई थीं। वह दौड़ कर ब्रजराज के पास पहुँची, पूछा प्रकाश कहाँ है। ब्रजराज ने कहा, "जरा अपने को बस में रक्खो धीरे धीरे बातें करो" कुछ देर बातें करने के बाद उसने अन्त में कहा "याद कर लो ठीक एक बजे बाग़ के दक्षिण ओर बड़े बरगद के नीचे सन्यासी के पास चन्दा को पहुँचाना तुम्हारा काम है। रात्रि अँधेरी है, स्टेशन दूर है। यहाँ से गाड़ी ठीक दो बजे जाती है। यदि यह गाड़ी मिस हुई (चूकी) तो सब बना बनाया काम बिगड़ जायगा। पर एक बात का ख़्याल रखना, चन्दा अपने साथ कुछ भी अपने यहाँ की चीज़ें न ले जाय नहीं तो प्रकाश बड़ा बिगड़ेगा, बोलो कर सकती हो?" प्रतिभा ने दृढ़ स्वर में कहा, "यदि यहाँ तक कर

दिया है तो इतना सा और करना कोई कठिन नहीं।" वह चन्दा के घर की ओर चल पड़ी। अपनी माँ को भेज वह चन्दा के पास चली गई। चन्दा अपने कमरे में ऊपर अकेली बैठी हुई थी। प्रतिभा ने दरवाजे के पास से ही गाना आरम्भ कर दिया, "आगे बैठे कृष्ण मुरारी जोहत बाट तुम्हारी।" चन्दा ने चिढ़ कर कहा ठीक यही तो गाने का समय है। प्रतिभा दौड़ कर चन्दा से लिपट गई। बोली सब को नैहर से सज-धज कर जाना होता है पर तुझे सन्यासिनी बन कर जाना होगा। योगिनी का योग पूरा हुआ। योगी महाराज बरगद के पेड़ के नीचे खड़े हैं। उसने पूरा हाल बताया। चन्दा के गम्भीर मुख मण्डल पर हल्की सी खुशी की रेखा खिंच गई पर शीघ्र ही विषाद में लीन हो गई। प्रतिभा ने पूछा 'क्या सोच रही हो ?'

चन्दा—"कर्तव्य और प्रेम में कौन बड़ा है ?"

प्रतिभा—"यह समय यह सोचने का नहीं हैं।"

चन्दा—"यही समय है।"

प्रतिभा—"चन्दा मोह में न पड़ो। व्यर्थ में तर्क वितर्क न करो। तैयार हो जाओ।"

चन्दा—"प्रतिभा मुझे अपने सुख के लिये अपने माँ बाप के नाम को कलङ्कित करने का क्या अधिकार है ?"

प्रतिभा—"उन लोगों को भी अपनी झूठी शान के लिये तुम्हारे प्रेम को कुचलने का क्या हक़ है ? क्या प्रकाश की ओर से बराबर शादी के लिये प्रस्ताव नहीं उठाया गया। क्या तुम्हारे घर वालों को तुम्हारे प्रेम का हाल नहीं मालूम।"

चन्दा—"यदि उन लोगों ने मेरे भावों की अवहेलना की है तो मुझे समस्त परिवार को दूषित करने का क्या हक़ है ? फिर वे मेरे माता पिता हैं, मेरे शरीर पर उनका अधिकार है। जिसको चाहें दे सकते हैं।"

प्रतिभा—"चन्दा तुम मोह में पड़ रही हो। तुमने पुस्तकों में पतिव्रता स्त्रियों का हाल तो पढ़ा है। उनके पति ही सब कुछ होते हैं भला तुम्हीं सोचो बेचारे प्रकाश की क्या गति होगी।"

चन्दा—"एक तो अभी मैं क्वाँरी हूँ। मेरा कोई पति नहीं। और जो प्रकाश के विषय में कहा उनका प्रेम पूर्ण है। वे सच्चे प्रेमी हैं। वे मुझे ऐसा ही उस समय भी प्यार करते रहेंगे वे मेरे शरीर को नहीं चाहते मेरे प्रेम को चाहते हैं।"

प्रतिभा ने बिगड़ कर कहा, "तू दुष्ट है जमीन्दारी के फेर में पड़ गई है। बातें बनाती है, सोचती होगी इनके साथ देश विदेश मारी मारी फिरना पड़ेगा जमीन्दार साहब के यहाँ गहनो से जड़ी बैठी रहूँगी।"

चन्दा रो पड़ी। उसने प्रतिभा का पैर पकड़ कर कहा, "प्रतिभा, बहन तुम ऐसा न कहो, जब तमाम गाँव और घर के लोग मेरे वक्षस्थल पर वाक्य बाण की वर्षा करते थे तुम ही अकेली ऐसी थीं जो हौले हौले उन ज़ख्मों पर मरहम लगाती थीं। तुम्हारा ताना मैं न सह सकूँगी। मेरे ऊपर दया करो। मेरी स्थिति पर ध्यान दो। मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूँ वे मेरे इस व्यवहार से कदापि सुखी नहीं हैं। हाय मेरा हृदय फटने लगता है जब मैं यह सोचती हूँ कि मुझ अभागिन के कारण उनको अपना देश छोड़ना पड़ेगा। अपने ऊँचे आदर्श से नीचे आना पड़ेगा। भला तुम्हीं बताओ जिसे तुम प्यार करती हो उसकी ऐसी दुर्दशा अपने कारण देख सकती हो? क्या तुम्हारा हृदय फट कर चूर चूर न हो जायगा।"

प्रतिभा ने चन्दा के आँसू पोंछते हुये कहा, "चन्दा तू ने मुझको बड़ी विचित्र दशा में डाल दिया है, मैं तुझे बचपन से जानती हूँ तब भला कैसे तेरे ऊपर अविश्वास करूँ पर तू तनिक प्रकाश की दशा पर ध्यान दे। और मैं क्या कहूँ।"

चन्दा—"तू भूल करती है। चाहे यौवन के उन्माद में हम लोग अभी इन कठिनाइयों पर कुछ ध्यान न दें पर यह दशा हमेशा न रहेगी। नदी बाढ़ पर है इस कारण केवल पानी ही पानी दिखाई देता है। लहरे तरंगें मार रही हैं पर शीघ्र नदी

उतरेगी भी। नीचे कीचड़ और पत्थर ही है। मैं उनके लिये भार हो जाऊँगी।"

प्रतिभा—"तो तू क्या करना चाहती है। साफ़ साफ़ बता।"

चन्दा—"उन्होंने इतने रोज तक पत्थर पर तीर नहीं चलाये हैं, बालू में बीज नहीं बोया है। मैं उनकी शिक्षा मानूँगी। मर्यादा का पालन करूँगी। वे मेरे सब कुछ हैं मैं उनकी इच्छा के विरुद्ध कुछ नहीं कर सकती।"

प्रतिभा—"तो तू कुँवर साहब से शादी करेगी ?

चन्दा—"यदि मेरे माता पिता यह शरीर उन्हीं को अर्पण करना चाहते हैं तो मैं मजबूर हूँ। आग हृदय में जलेगी पर उसकी लपट बाहर न आवेगी। मैं राजपूत बाला हूँ कुल की कानि को न तोड़ूँगी।"

प्रतिभा—"तू राक्षसी है। यह मेरा तेरा अन्तिम मिलन है। बोल तू कुछ प्रकाश के लिये भी कहना चाहती है।"

चन्दा—"बहन तू सच कहती है। मेरा तेरा यह अन्तिम मिलन है।"—(उसके आँखों में आँसू भर आये।) रोते रोते कहा, "उनसे कह देना कि जब आही गये हैं तब आज रात्रि को अवश्य रुक जावें। देखें इतने रोज की शिक्षा व्यर्थ नहीं गई। मैं किस भाँति मर्यादा का पालन करती हूँ। देख कर उन्हें आनन्द होगा।"

प्रतिभा रो पड़ी। अपने को सँभाल कर घर की ओर चल पड़ी। उसकी दशा मुकद्मा हारे हुये असामी की भाँति थी। प्रतिभा के जाने के बाद चन्दा बहुत देर तक चुपचाप बैठी रही। अपनी सन्दूक से एक अच्छी साड़ी निकाल कर पहिना। अपनी भाभी के पास गई। बहुत रोज़ बाद आज वह ख़ुश दिखाई पड़ी। उसकी भाभी मुस्कुराई। वह अपने कमरे में चली आई, भीतर से किवाड़ बन्द कर लिया, करीब १२ बजे थे। चारों ओर शान्ति थी उसने विलम्ब करना उचित न समझा। उसके पिता जी अफ़ीम खाते थे। चन्दा ही उसे रखती थी। उसने एक ग्लास में शर्बत बनाया। प्रकाश का ध्यान कर पी गई। एक क़ागज पर कुछ लिखा। पलँग पर मुँह ढाप कर सो गई। फिर कभी न उठी।

प्रातःकाल बारात आई। सब कोई स्वागत में लगे थे पर चन्दा न उठी। केवाड़ा फटफटाया पर कुछ फल न हुआ। दोपहर के करीब किवाड़ा तोड़ा गया। चन्दा का शरीर जिस पर उसके माँ-बाप का, समाज का और लोक लाज का अधिकार था वहीं पर पड़ा हुआ था। घर में कोहराम मच गया। प्रतिभा दौड़ी हुई आई चन्दा से लिपट गई। उसकी नज़र क़ागज़ पर पड़ी। उसे उठा लिया। मोटे मोटे अक्षरों में लिखा था, "मर्यादा की रक्षा"